



शोध सरोवर पत्रिका

आरती, वषुतक्काट्ट, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य।

RNI No. KERHIN/2017/70008 ISSN No. 2456-625 X

वर्ष 7

अंक 25 त्रैमासिक हिन्दी शोध पत्रिका

10 जनवरी 2023

		इस अंक में	
पीयर रिव्यू समिति: डॉ. शांति नायर डॉ. के. श्रीलता डॉ. बी. अशोक	संपादकीय	:	3
	प्रेमचंद के कहानी साहित्य में अभिव्यक्त	: डॉ. जयश्री.ओ	4
	किसान जीवन-यथार्थ: 'पूस की रात' कहानी के विशेष संदर्भ में		
	एकांत का काव्य दर्शन	: डॉ. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत	7
मुख्य संपादक डॉ. पी. लता प्रबंध संपादक डॉ. एस. तंकमणि अम्मा सह संपादक प्रो. सती. के डॉ. एस. लीलाकुमारी अम्मा श्रीमती वनजा. पी संपादक मंडल डॉ. बिन्दु. सी. आर डॉ. षीना. यू. एस डॉ. सुमा. आई डॉ. एलिसबत्त जोर्ज डॉ. लक्ष्मी. एस. एस डॉ. धन्या. एल डॉ. कमलानाथ. एन. एम डॉ. अश्वती. जी. आर	रामधारी सिंह दिनकर की 'परदेशी' कविता में	: डॉ. राजू सी. पी	13
	संसारिक जीवन की विडंबना एवं क्षणिकता		
	आदिवासी साहित्य का अर्थविज्ञान	: डॉ. मधु वासुदेवन	15
	आधुनिक समाज में पिण्डदान अनुष्ठान की	: पियुष देउरकर	17
	सार्थकता और निहित मनोविज्ञान		
	कोश निर्माण का लंबा इतिहास एवं	: डॉ. मोहनन वी. टी. वी.	20
	अनुवादकों का स्थान		
	हिन्दी के कुछ चुने हुए उपन्यासों में चित्रित	: डॉ. अञ्जलि. एन	23
	दलित जीवन		
	पत्रकारिता के विकास के संदर्भ में हिंदी	: डॉ. सुजित एन तंपी	27
गद्य का बदलाव			
सिद्ध गोष्ठी और हठयोग में मोक्ष की	: सचिन भारद्वाज	29	
संकल्पना का अध्ययन			
मिथकीय परिपेक्ष्य में समकालीन नाटक	: डॉ. शबाना हबीब	33	
अस्मिता के तलाश में 'धूल पौधों पर'	: डॉ. षीबा एम. आर	36	
भारतीय न्यायिक व्यवस्था में हिन्दी भाषा	: डॉ. प्रदीप कुमार पाण्डेय	39	
के प्रयोग की स्थिति			
'सुनो शेफाली' में अभिव्यक्त राजनीतिक	: शिल्पा एस. एल	44	
चेतना			
दलित चेतना 'छप्पर' उपन्यास के संदर्भ में	: नेजमा टी. एन	46	
केन्द्र सरकारी कार्यालयों में हिंदी शिक्षण	: डॉ. अजित्रा. आर एस	49	
योजना			

यू जी सी से अनुमोदित पत्रिका

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ डी.वी.सुरेख ई.एन फॉन्ट में या हिंदी यूनिकोड मंगल फॉन्ट में टंकित होनी चाहिए। लेख के प्रारंभ में लेख का सार अपेक्षित है जो अधिकतम 150 से 200 शब्दों के मध्य हो। सार में लेख लिखने का उद्देश्य अवश्य परिलक्षित होना चाहिए। लेख के अनुरूप 5 से 7 'की वर्ड' (बीज शब्द) भी लिखें। लेख को यथोचित उपशीर्षकों में विभाजित करके लिखें। लेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य दें। शब्द सीमा 2500 से 3000 शब्दों की हो। आलेख के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची ए.पी.ए. के प्रारूप में हो। लेख भेजते समय अपने नाम, पता, फोन नंबर एवं लेख का शीर्षक ई-मेल में अवश्य लिखें। इस आशय का एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत कर दें कि लेख मौलिक है, अप्रकाशित है, भविष्य में इससे संबंधित किसी भी विवाद के लिए लेखक उत्तरदायी होंगे।

रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता अंकित करें। संक्षिप्त जीवन-परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक

डॉ.पी.लता

शोध सरोवर पत्रिका

मूल्य : एक प्रति रु. 100/-

वार्षिक शुल्क रु.400/-

पत्रिका के संबंध में अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें - डॉ.पी.लता (संपादक, शोध सरोवर पत्रिका; मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी), आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफीस लेन, ई-28, वधुतक्काट्टु, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य।

फोन : 0471-2332468, 9946253648, 9946679280

ई-मेल : akhilbharatheeyhindiacademy@gmail.com

वेबसाइट : www.shodhsarovarpathrika.co.in

महाकवि भारतीयार नाम से विख्यात भारत के महान कवि, तमिल के अग्रणी कवि श्री सुब्रह्मण्य भारती का जन्म तमिलनाडु के एट्टियपुरम गाँव में 11 दिसंबर 1882 को हुआ। केन्द्र सरकार के शिक्षा मंत्रालय की भारतीय भाषा समिति ने भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देने के उद्देश्य से 11 दिसंबर को श्री सुब्रह्मण्य भारती के जन्म दिन को 'भारतीय भाषा दिवस' या 'भारती भाषा उत्सव' के रूप में मनाने की सिफारिश की। यू जी सी ने इसे मनाने का निर्देश हायर एजुकेशन इंस्टिट्यूशनों को दिया। उच्च शैक्षिक संस्थानों ने इस निर्देश का पालन करके 11 दिसंबर 2022 को 'भाषा दिवस' के रूप में मनाया। भारतीय भाषा समिति के अध्यक्ष श्री चामू कृष्णशास्त्री ने 'भाषा दिवस' मनाने की सिफारिश के बारे में यूँ कहा है- "बहुभाषावाद को मज़बूत करने, लोगों को अधिक भाषाएँ सीखने को प्रोत्साहित करने तथा लोगों में विविधता में एकता का भाव जगाने के लिए 'भारतीय भाषा दिवस' मनाने और इसे 'भारतीय भाषा उत्सव' के रूप में मनाने की सिफारिश की गयी है।"

हमें और भी 'भाषा दिवस' हैं, जैसे-21 फरवरी- 'अंतर्राष्ट्रीय मातृभाषा दिवस', 14 सितंबर- 'हिन्दी दिवस', 10 जनवरी- 'विश्व हिन्दी दिवस' आदि। राष्ट्र कवि सुब्रह्मण्य भारती का जन्म दिवस 'भारतीय भाषा दिवस' के रूप में स्वीकृत होना सर्वथा उचित बात है। भारतीजी ऐसे व्यक्ति थे कि उनकी अच्छी पकड़ तमिल, हिन्दी, बंगला, संस्कृत, अंग्रेज़ी, फ्रेंच आदि भाषाओं पर थी। तमिल उनकी प्रिय भाषा थी। गद्य और पद्य दोनों पर उनका समान अधिकार था और उन्होंने कई रचनाएँ की थीं। उनकी प्रारंभिक कविताओं में तमिल राष्ट्रवाद देखा जाता है, किन्तु अनंतर रचनाएँ भारतीयता से प्रभावित हैं। उन्होंने कहा है- 'यह परिवर्तन स्वामी विवेकानन्द और भगिनी निवेदिता के कारण हुआ।' उनकी राष्ट्रप्रेम की कविताएँ इतनी श्रेष्ठ हैं कि उन्हें

'भारती' उपनाम मिला।

सन् 1905 में काशी में आयोजित कांग्रेस अधिवेशन में सुप्रसिद्ध गायिका सरलादेवी ने बंकिमचन्द्रजी का 'वंदेमातरम' गाया, जिस अधिवेशन में भारतीजी ने भी भाग लिया। तबसे 'वंदेमातरम' भारतीजी का प्रिय गान बना और काशी से मद्रास वापस आकर उन्होंने इस गीत का उसी लय में तमिल भाषा में अनुवाद किया, जो बाद में तमिलनाडु के घर-घर में गूँज उठा।

जब सुब्रह्मण्य भारती पाँच साल के थे तब उनकी माता लक्ष्मी अम्माल का निधन हुआ, पिता चित्र स्वामी सुब्रह्मण्य अय्यर भी गुज़र गये। 11 वर्ष की आयु में एक कवि सम्मेलन में भाग लेने का मौका उन्हें मिला और वहाँ उनकी प्रतिभा मानकर वे सम्मानित भी हुए। बालक भारतीजी वारणासी में अपनी बुआ के यहाँ रहते वक्त उनका परिचय अध्यात्म और देशीवाद से हुआ। उन्होंने संगीत का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेज़ी भाषाओं का अध्ययन भी किया।

सुब्रह्मण्य भारतीजी कवि ही नहीं, स्वतंत्रता सेनानी, समाज सुधारक एवं पत्रकार भी थे। राष्ट्रप्रेमी भारतीजी ने स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। उनकी देशभक्तिपरक रचनाओं से प्रभावित होकर दक्षिण भारत के जन साधारण ने भी स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लिया।

भारतीजी पत्रकारिता में रुचि रखते थे। तमिल दैनिक 'स्वदेश मित्रम्', तमिल साप्ताहिक इंडिया, बाल भारत आदि के संपादन-प्रकाशन किये। उन्होंने अपने समाचार पत्रों में व्यंग्यात्मक-राजनीतिक कार्टून भी प्रकाशित किया।

उनकी प्रारंभिक शिक्षा तमिलनाडु के स्थानीय विद्यालय में और उच्च शिक्षा बनारस में हुई।

राष्ट्रप्रेमी भारतीजी के मन में आज़ादी की भावना रहने के कारण वे भारत में होनेवाली कांग्रेस

बैठकों में भाग लेते थे। कांग्रेस के उग्रवादी तबके के निकट होने के कारण पुलिस उन्हें गिरफ्तार करना चाहती थी। सन् 1908 में वे पोंडिच्चेरी (पुतुच्चेरी) गये। वहाँ ठहरके अपनी रचनाओं के ज़रिए आज़ादी की बात कही। सन् 1918 में वे वहाँ से ब्रिटिश भारत में लौट आये। 20 नवंबर 1918 को उनका गिरफ्तार कर लिया गया और कुछ दिनों जेल में रहना पड़ा।

11 सितंबर 1921 को 38 वर्ष की आयु में मद्रास में भारतीजी का निधन हुआ। उनकी रचनाएँ लोकप्रिय बनीं और वे अमर राष्ट्रकवि बने। उनकी कविताओं में देशप्रेम कूट-कूटकर भरा हुआ है। स्वदेश गीत (1908), जन्मभूमि (1909) आदि देशभक्ति काव्यों में ब्रिटिश सरकार के प्रति ललकार के भाव मौजूद हैं। वे आज़ादी के लिए तीन बातें ज़रूरी मानते थे - बच्चों को विद्यालय, कल-कारखानों में औजार,

अखबार छपने को कागज़ आदि। 'मुक्ति का आह्वान' कविता की पंक्तियाँ देखिए-

'तुम स्वयं ज्योति हो माँ
शौर्य स्वरूपिणी हो तुम माँ
दुख और कपट की संहारिका हो माँ
तुम्हारी अनुकंपा की प्रार्थी हूँ मैं माँ।

ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ स्वतंत्रता-संग्राम के समय मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, दिनकर, सोहनलाल द्विवेदी जैसे कई हिन्दी कवियों ने इस संग्राम में भाग लेने को जनता का आह्वान किया तो दक्षिण भारत में कवि सुब्रह्मण्य भारती ने यह महान कार्य किया।

संपादक

डॉ.पी.लता

मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी

प्रेमचंद के कहानी साहित्य में अभिव्यक्त किसान जीवन-यथार्थ: 'पूस की रात' कहानी के विशेष संदर्भ में।



सार:

प्राचीन काल से भारत को कृषि प्रधान देश माना जाता है जिसके अर्थतंत्र की रीढ़ किसान है। आज भी सत्तर फीसदी लोग अपने जीवन यापन के लिए कृषि का आश्रय लेते हैं। बीसवीं सदी के प्रारंभिक दशक में देश की औपनिवेशिक व्यवस्था में किसानों की जो दशा थी, आज़ादी के पचहत्तर वर्ष के बाद आज़ादी का अमृत महोत्सव मनानेवाली इस वेला में भारतीय किसान की क्या दशा है, इस संबंध में सदा हमें अखबारों से पता चलता है। इसका प्रभाव साहित्य में होना स्वाभाविक है। क्योंकि साहित्य और समाज का बिंब-प्रतिबिम्ब संबंध होता है। किसानों के जीवन का वर्णन जितने सच्चे, मर्मस्पर्शी, जीवंत और क्रमिक तरीके से प्रेमचंद ने अपने साहित्य में किया है वह शायद ही और किसी ने नहीं किया है। आपका 'प्रेमाश्रम' उपन्यास कृषक जीवन पर आधारित हिन्दी का पहला

डॉ. जयश्री.ओ

उपन्यास है और 'प्रेमाश्रम', 'कर्मभूमि' और 'गोदान' को किसान जीवन पर लिखे गये प्रेमचंद के उपन्यासों की ब्रह्म त्रयी कहा जाता है। आपने किसान के प्रति पूरी तरह संवेदनशील रहते हुए उसकी सारी विशेषताओं एवं विसंगतियों को अपनी रचना में उतारा है। किसान के हृदयविदारक पहलू को अत्यंत मार्मिकता के साथ उजागर करनेवाली प्रेमचंद की कहानियों में 'पूस की रात' का विशेष महत्व है। किसान जीवन पर आधारित आपकी अन्य कहानियाँ हैं 'मुक्तिमार्ग', 'मुक्तिधन', 'सवा सेर गेहूँ', 'ज्योति', 'नेउर', 'दूध कादाम' आदि। इन सभी रचनाओं में किसान परिवार की आन्तरिक मूल्य व्यवस्था के चित्रण के साथ उनके सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक शोषण की करुणगाथा भी है।

बीज शब्द: जीवन यथार्थ, सूदखोर, महाजन जमींदारी व्यवस्था, ऋणग्रस्तता, आर्थिक शोषण, बर्बादी।

सार :

सन् 1930 में रचित प्रेमचंद की कहानी 'पूस की रात' किसानों की तबाही का दास्तान है। प्रस्तुत कहानी में प्रेमचंद ने हल्कू नामक किसान के माध्यम से गरीब किसान की निपट दरिद्रता, निरीहता, विवशता; सूदखोर महाजन और ज़मींदार द्वारा उसके शोषण तथा किसान का मज़दूर बनने की लाचारी का यथार्थ चित्रण किया है। हल्कू ने अपनी मज़ूरी से एकएक पैसा काट-काट करके तीन रुपये एक कम्बल खरीदने की आशा से इकट्ठा किये थे, जिससे पूस के मौसम की रात में अपनी फसल की पहरेदारी करते समय खून जमा देनेवाली ठंडक से अपने को बचा सके। साहूकार सहना की गालियों और घुड़कियों के सामने हल्कू की सारी आशाएँ फूट पड़ती हैं। हल्कू के लिए जाड़े की घोरतम सर्दी से असह्य थीं साहूकार की कान फोड़नेवाली गालियाँ। इसलिए वह तीन रुपये सहना को थमा देता है। कड़ाके जाड़े की रात में वह कम्बल के बिना हार जाता है। हल्कू अपनी ठंडक को दूर करने के लिए उस रात को कई हुक्के की चिलमें पीता है, किंतु वह प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है। बाद में वह पास के बाग से सूखे पत्तों को इकट्ठा करके आग जलाता है। ताप से कुछ चैन मिलता है उसे और यह गर्मी उसमें आलस्य भर देती है। इतने में नीलगायों का झुंड उसकी खेती को रौंद जाता है। उसका प्यारा कुत्ता जबरा नीलगायों को भगाने की कोशिश करता है, लेकिन परास्त हो जाता है। अपना सारा परिश्रम नष्ट होने पर एकदम हल्कू मन ही मन आश्वस्त हो जाता है कि रात की ठंडक में यहाँ आगे सोना न पड़ेगा। यही प्रस्तुत कहानी का सारांश। विवेच्य कथा के माध्यम से प्रेमचंद ने भारतीय किसान जीवन के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया है। यथा:

ऋणग्रस्तता: किसानों के संबंध में गरीबी ही उनकी दौलत है। माटी से जुड़े अधिकांश भारतीय किसान गरीबी और भूखमरी से त्रस्त रहते हैं। किसानों के लिए खेती सिर्फ जीविका ही नहीं, जीवन ही है। उनके जीवन का सबसे बड़ा प्रश्न है, खेती के मर्जाद की रक्षा करना इसके लिए वे ऋणग्रस्तता के जाल में फँस जाते हैं।

फसल के लिए साहूकारों-महाजनों से ब्याज पर पैसा उधार लेते हैं। यदि दुर्भाग्य से उस साल प्राकृतिक आपदा से अपनी फसल खराब हो जाती तो कर्ज अदा करने में असमर्थ हो जाते हैं। जीवनभर इस ऋणग्रस्तता का शिकार बनते रहते हैं। हल्कू ने भी कठिन मेहनत करके तीन रुपये कमाये हैं एक कम्बल खरीदने के लिए, जिससे चैन से पूस की रात में अपनी खेती की रखवाली कर सके। लेकिन स्वाभिमानी हल्कू मान लेता है कि साहूकार की गालियाँ सुनने तथा घुड़कियाँ खाने से बढ़कर है जाड़ों में मरना। इसलिए वह अनमना ही अपनी कमाई साहूकार को थमा देता है। हल्कू ने रुपये लिए और इस तरह बाहर चला मानो अपना हृदय निकालकर देने जा रहा हो। उसने मज़ूरी से एक-एक पैसा काट-काटकर जो तीन रुपये कम्बल के लिए जमा किए थे, आज निकले जा रहे थे। एक-एक पग के साथ उसका मस्तक अपनी दीनता के भार से दबा जा रहा था।¹

शोषण का शिकार: भारतीय किसान घोर परिश्रमी है। किन्तु अपने कठिन परिश्रम का फल उसे नहीं मिल पाता है। उसके फायदे से पूरी तरह वंचित ही रह जाता है। अपनी आर्थिक ज़रूरतों को अपनी उपज से पूरा नहीं कर पाता है। फलतः वह गरीबी और बदहाली में संपूर्ण जीवन बिता रहा है। लगान भरने और बाकी चुकाने में ही उसकी ज़िन्दगी खप जाती है। कभी बिरादरी का दंड चुकाने या अपनी व्यक्तिगत ज़रूरतों के लिए महाजनों से कर्ज लेता है। साहूकार तो इसके लिए अपना ही गणित बना रखते हैं। अशिक्षित होने के कारण बेचारा किसान हिसाब वगैरह नहीं जानता है। अतः वह चुपचाप अपना अंगूठा लगाकर ऋण ले आता है। साहूकार जो कुछ कहता है वही चुकाना पड़ता है उसे। किसान अपना खून पसीना बहाकर भी भूख से बिलबिलाता रहता है तथा कई करह के आर्थिक दबावों की यंत्रणा झेलते रहते हैं। ज़मींदारों और महाजनों की शोषणवृत्ति के शिकार बने यह कृषक वर्ग सदैव अभावों और दरिद्रता की चक्की में पीसता रहता है। हल्कू की नियति है कि वह हर साल साहूकारों से उधार ले और अपनी सारी कमाई सिर्फ सूद

चुकाने में खर्च करे। उसकी पत्नी-मुन्नी का कथन इसका दस्तावेज़ है-“न जाने कितनी बाकी है, जो किसी तरह चुकने ही नहीं आती, मैं कहती हूँ, तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते? मरमर काम करो, उपज है तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई। बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जनम हुआ है। पेट के लिए मजूरी करो। ऐसी खेती में बाज आये।”²

प्राकृतिक विपदा: प्राकृतिक विपदाओं से त्रस्त किसान की खेती मौसम की मेहरबानी पर निर्भर है। मौसम के उतार-चढ़ाव के कारण खेती पर संकट आता है। फलतः उसे पुनः ऋण लेना पड़ता है। यह ऋण गतिशील होता रहता है। उसकी गतिशीलता के आगे किसान का श्रम गतिशून्य हो जाता है। अभावों में पलनेवाला किसान जी तोड़ मेहनत करने के बाद भी अपनी रोजी रोटी नहीं जुट पाता। वह तो शोषणग्रस्त जीवन जीने के लिए बाध्य होता है। एक ओर साहूकारों या महाजनों के शोषण से पीड़ित है तो दूसरी ओर बाढ़, अकाल, तूफान या जंगली जानवरों के आक्रमण आदि अनेक प्राकृतिक विपदाएँ भी उन्हें सताती हैं। जंगली जानवरों से बचाने के लिए हल्कू कड़ी सर्दी में भी अपनी खेती का पहरेदारी करता है। लेकिन कठिन मेहनत करने पर भी वह हार जाता है। “कैसी अच्छी खेती थी, पर ये दुष्ट जानवर उसका सर्वनाश किये डालते हैं।”³

खेती से हताश एवं ऊब: किसानों के संबंध में खेती केवल आजीविका का साधन नहीं, बल्कि उनका जीवन ही है। इसलिए ही वे खेती छोड़कर मज़दूर बनना कदापि नहीं चाहते हैं। अनेक कष्टों के बावजूद उनका किसान बने रहने की जिहनुमा आकांक्षा तो किसान के अस्तित्व की रक्षा का सवाल है। लेकिन खेद की बात है कि साहूकारों के शोषण एवं प्राकृतिक आपदाओं से जूझता हुआ किसान अन्दर से कमज़ोर हो जाता है। कर्ज में डूबे किसान अपने पेट भरने के एक मुट्ठी अन्न जुटाने या घोर ठंडेपन से अपने को बचाने के लिए एक कंबल खरीदने में भी असफल निकलते हैं। उनकी नियति है कि खाली पेट की विवशताएँ सहते हुए साहूकारों या महाजनों के खलिहान भरना। हल्कू कहता है - “एक-

एक भगवान ऐसे पड़े हैं, जिनके पास जाड़ा जाय तो गर्मी से घबराकर भागे। मोटे-मोटे गेहूँ, लिहाफकमल। मज़ाल है कि जाड़े का गुज़र हो जाय। तकदीर की खूबी है! मजूरी हम करें, मज़ा दूसरे लूटें।”⁴ इसप्रकार गरीबी से लाचार होकर खुदकुशी करते समय भी उसके श्रम का फल भोगनेवाले अपनी आँखों के सामने आरामतलब ज़िन्दगी जी रहे हैं। इसपर बेचारा किसान एकदम हताश होते हैं। यों जाड़े की भीषणता से पीड़ित हल्कू से उसकी पत्नी मुन्नी कहती है-“तुम छोड़ दो अबकी से खेत। मजूरी में सुख से एक रोटी खाने को तो मिलेगी। किसी को धौंस तो न रहेगी।”⁵

किसान का परिवेश व पशु धन के साथ रिश्ता: किसान और पृथ्वी का अटूट संबंध है। उनके लिए भूमि ही सबकुछ है। दरअसल किसान के लिए खेती एक धंधा नहीं, बल्कि अपनी जीवन-शैली एवं रोज़मर्रा ज़िन्दगी का एक बड़ा हिस्सा भी है। इसलिए सबकुछ खोकर भी वह किसान बना रहना चाहता है। इसके लिए वह खून पसीना करके काम करता है। उसकी बेबसी और विवशता केवल अपने ही होते हैं, उसके प्रति किसी को कोई संवेदना नहीं। जाड़े हो या गर्मी हो या दिन हो या रात अपना जानवर ही उसका एकमात्र आश्रय है। हल्कू का प्रिय मित्र जबरा नामक कुत्ता पूस की रात की ठंडक में भी उसका साथ नहीं छोड़ता। हल्कू और जबरा यहाँ मनुष्य और पशु न होकर सहानुभूति के तार में बंधे प्राणी मात्र हैं। अपने वफ़ादार कुत्ता जबरा को शरीर में सटाकर शीत भगाने की कोशिश करता है। कुत्ते की देह से जाने कैसी दुर्गन्ध आ रही थी, पर वह उसे अपनी गोद से चिपटाये हुये ऐसे सुख का अनुभव कर रहा था, जो इधर महीनों से उसे न मिला था। जबरा शायद समझ रहा था कि “स्वर्ग यही है, और हल्कू की पवित्र आत्मा में तो उस कुत्ते के प्रति घृणा की गन्ध तक न थी। अपने किसी अभिन्न मित्र या भाई को भी वह इतनी ही तत्परता से गले लगाता। वह अपनी दीनता से आहत न था, जिसने आज उसे इस दशा में पहुँचा दिया। नहीं, इस अनोखी मैत्री ने जैसे उसकी आत्मा के सब द्वार खोल दिये थे और उसका एक-एक अणु प्रकाश से चमक रहा था।”⁶

निष्कर्ष

अभावों में पलनेवाला किसान जी तोड़ मेहनत करने के बाद भी अपनी रोज़ी रोटी नहीं जुट पाता। वह तो शोषणग्रस्त जीवन व्यतीत करने को बाध्य है। उसका जीवन इतना दयनीय है कि रात के कड़ी ठण्डक से अपने को बचने के लिए एक कंबल खरीदने में भी असमर्थ निकलता है। कंपकंपाती सर्दी एवं खाली पेट उसे इतना उदासीन बना देती है कि खड़ी फसल को जानवरों द्वारा बर्बाद करने पर वह एकदम उदासीन एवं अकर्मण्य बन जाता है और मन ही मन प्रसन्न होता है कि “कल रात की ठंड में यहाँ सोना तो न पड़ेगा।”⁷ इस प्रकार प्रेमचंद ने विवेच्य कहानी में हल्कू के जीवन-संघर्ष द्वारा अमीर लोगों का पेट भरनेवाले उस अन्नदाता किसान की हृदय विदारक कथा हमारे सम्मुख पेश किया है जो दिन-रात खेत की मड़ाई पर बैठकर अपने सपनों को फसलों के माध्यम से पूरा करने का अरमान सजा लेता है। प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में केवल किसानों के आर्थिक शोषण का ही वर्णन नहीं अपितु उनकी मानसिक धड़कन का ही अंकन किया है। स्वयं प्रेमचंद ने स्वीकारा है कि सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो। ‘पूस की रात’ कहानी के हल्कू और उसकी पत्नी मुन्नी तथा उनके जीवन साथी कुत्ता जबरा की कथा इस दृष्टि से अनुपम है। वास्तव में गरीब किसान की मानसिक संघर्ष

की कथा है ‘पूस की रात’। वर्तमान समय में सरकार द्वारा किसानों के लिए कई योजनाएँ बनायी जा रही हैं लेकिन बेचारा किसान इन सबसे अनभिज्ञ रहता है। अतः इसका फायदा उठाते हैं दूसरे लोग। प्रसिद्ध लेखक संजीवजी ने भारत देश के किसान के संबंध में कहा है कि इस देश का किसान कर्ज में ही जन्म लेता है, कर्ज में ही जीता है, कर्ज में ही मर जाता है। यह तो सभी काल के हल्कू जैसे किसान वर्ग की नियति है। वर्तमान समय की बढ़ती हुई कृषक आत्महत्याएँ तथा उनकी जीवन विसंगतियों को देखकर ऐसा लगता है कि वर्तमान भारत में हल्कू अब भी ज़िन्दा है।

संदर्भ

1. प्रेमचंद की श्रेष्ठ कहानियाँ पूस की रात, सं. डॉ. कुमार, कृष्णवाणी प्रकाशन, 2000, पृ. 79-80
2. वही, पृ. 79
3. वही, पृ. सं. 83
4. वही, पृ. सं. 80
5. वही, पृ. सं. 79
6. वही, पृ. सं. 80-81.
7. वही, पृ. सं. 84.

◆ असिस्टेंट प्रोफ़सर

हिंदी विभाग

यूनिवर्सिटी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम, केरल।

फोन- 9539204383

एकांत का काव्य दर्शन



कविता गहराइयों की कला कही जाती है। वह जीवन की सूक्ष्मानुभूतियों का सार रूप है, जिसकी प्रतीकवत् व बिंबवत् व्याख्या कविता में की जाती है। यह व्याख्या पाठक को जीवन के गूढ़ रहस्यों से वाकिफ़ कराती है। इसमें इतिहास की झाँकियाँ रहती हैं, वर्तमान की दीप्त अनुभूतियाँ रहती हैं, भविष्य के संकेत पर्याप्त मात्रा में रहते हैं। इनसे जीवन की अंतः प्रकृति

◆ अपर्णा ए * डॉ. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत

की विराटता का उद्घाटन होता है, जिसमें कल्पनात्मकता भरपूर रहती है, उसे कविता की संज्ञा दी जाती है। इसके अध्ययन से मानव की चेतना विस्तार पाती है, मानव के जीवन का नैतिक आधार पुष्ट होता है। जो हमारे अनुभव संसार से प्रच्छन्न है, कविता उससे हमारा मुखातिब कराती है। अतः कविता को भाषा के माध्यम से अज्ञात और अदृश्य में झाँकने की विरल कोशिश कही जा सकती है।¹ कविता के इस स्वरूप को

समझना अपने आप में सर्जन-कार्य से कम नहीं है। समकालीन कवि एकांत श्रीवास्तव का निबंध संकलन 'कविता का आत्मपक्ष' इसका उत्तम निदान है। इस शोध लेख के माध्यम से एकांत के काव्यात्मक दर्शन के आत्मस्वरूप को समझने का प्रयास किया गया है। (कुंजी शब्द: कल्पना, स्मृति, मानवता, विचार, लोक)

कविता के आदि स्रोत के रूप में रामायण को लेते हुए कवि कहता है एक महान् सभ्यता की तरह कभी कविता का आरंभ हुआ था। क्रौंच वध की पीड़ा से...सभ्यता का आरंभ जीवन का आरंभ था और कविता का आरंभ जीवन को सुंदर बनाने के स्वप्न के आरंभ का पर्याय था।² अर्थात् कविता की उत्कृष्टता इसी बात पर निर्भर है कि वह बाहरी दुनिया के साथ कितनी गहनता से जुड़ पाती है। यही जुड़ाव कविता की सांस्कृतिक गरिमा का आधार है, यही हमारी सभ्यता या संस्कृति का बुनियाद है। संस्कृति मनुष्य की उदात्त जीवनपद्धति है, जो व्यक्ति को माँजने का कार्य सतत करती है। संस्कृति एक ऐसा अपरिहार्य उपकरण है, जिसके प्रयोग से मनुष्य और उसका पर्यावरण अपने भीतर होनेवाले परिवर्तनों की गति और दिशा को एक सीमा तक नियंत्रित कर सकता है।³ इसलिए कविता जीवन को सुंदर बनाने का भावात्मक-वैचारिक सर्जना का नाम है, जिससे हमारे जीवन की कुरूपता का विसर्जन हो जाता है। आदिकवि वाल्मीकि आदि कविता (रामायण) से ही हिंसा का निषेध करते हैं तथा प्रेम का प्रसारण करते हैं। कविता सचमुच अपने से इतर के साथ की रागात्मकता की बात करती है। इसी रागात्मकता से सामाजिकता पल्लवित एवं पुष्पित होती है। सामाजिकता के संवर्द्धन के साधन होने के कारण कविता मानवीयता को सुरक्षित रखने में सफल निकलती है। इसलिए सामाजिकता को बचाने के क्रम में कविता मृत्यु के विरुद्ध मनुष्य की आत्मा का सर्वाधिक प्रतिरोधी एवं सशक्त टीका बन जाती है।⁴ एकांत का कहना है कि बाहरी दुनिया के दुख में शरीक होने में ही कविता की अक्षयता है, रामायण इसका उत्तम निदान है। इसी भाव संवेदना के स्तर पर हाँ में हाँ मिलाने हुए लीलाधर जगूड़ी

ने एक बार कहा है कि कविता का जन्म व्यक्ति की जगत चिंता से हुआ है। भारतीय माइथालॉजी में कविता का जन्म वाल्मीकि की सांसारिक चिंता के कारण हुआ। क्रौंच वध से यह भी खबर मिलती है कि हत्या और वियोग के विरोध में वह पैदा हुई। कविता बिछुड़ने के खिलाफ़ और प्रेमपूर्वक साथ रहने के पक्ष में पैदा हुई है।¹ इस लिहाज से कविता एक प्रेममयी सांस्कृतिक साधना का रूप धारण करती है।

एकांत श्रीवास्तव का कवि मन इस बात को स्वीकार करता है कि कविता में संश्लिष्टता का गुण अवश्य है। इसका तात्पर्य यह है कि कविता में भाव-सघनता है, शब्दों की समाहार शक्ति है, संवेगों की संधि है, विचारों का संग्रथन है, जिनकी वजह से कविता लिखते समय कवि को अत्यधिक सावधानी बरतनी पड़ती है। कविता सिर्फ़ कल्पना का विलास मात्र नहीं रह जाती है, जीवन की यथार्थता के साथ वह निकटवत् संबंध बनाए रखती है। इस संबंध को जानने के प्रकरण में कविता की आत्मा यह पहचानती है कि समाज में बहुत सारे कार्य इस रूप में प्रतिभासित होते हैं, जिनसे यथास्थिति का आभास मात्र होता है। जो कार्य हमारी आँखों के सामने प्रतिभासित होता है, वह यथार्थ से कोसों दूरी पर स्थित है। उसकी तह में जीवन का यथार्थ रहता है, जो हमारे सांस्कृतिक स्वरूप को नियंत्रित करता है। यथास्थिति के पश्च में कार्यरत यथार्थ के मूलकारक तत्वों को पहचानना एकदम सामान्य मनुष्य के लिए असंभव है। यह पहचान अपने आप में सृजनात्मक है। इस पहचान से जीवन की विसंगतियों से मानव परिचित हो जाता है। इन विसंगतियों, कुरूपताओं को जीवन में ऐसे ही छोड़कर संवेदनशील कवि का मन बाहर आराम से खड़ा नहीं रह सकता है। बात यह है कि जीवन की कुरूपताओं से निष्पन्न जीवन के दुख से कविता सन्यास नहीं ले सकती है, क्योंकि सच्ची कविता दुख की आह से निकली हुई होती है। उस दुख से मुक्त होने की अदम्य छटपटाहट कविता की चमक दमक है। कविता के अंतस्थल में स्वप्न का जो साम्राज्य फैला हुआ होता है, वह इन दुखों से मुक्त होने के सर्जनात्मक

उपाय का परिणाम है। वह स्वप्न जीवन में कभी मरहम का काम करता है, आशा का संचार करता है, जीवन को भविष्योन्मुख बनाता है। इस प्रकार जीने की उत्प्रेरणा के रूप में कविता काम करती है। इससे लगता है कि कविता का संसार दो पाठों में विभक्त है- एक तरफ़ यथार्थ कविता के कलेवर में सगुंफित है, दूसरी तरफ़ स्वप्न(कल्पना) का मायावी प्रभाव कविता में चढ़ा हुआ दिखाई देता है। इन दोनों के बीच में पुल के रूप में कवि खड़ा होता है और यथार्थ और स्वप्न के बीच के विविधात्मक स्वरूप को हमारे सामने रखता है। जीवन का यथार्थ शून्य का उत्पाद नहीं, उसकी अपनी विशिष्ट ऐतिहासिकता होती है, जिसका अनुभव वर्तमान में मनुष्य करता है। इसलिए समाज की यथार्थता को ऐतिहासिक प्रकरण के आलोक में संबोधित किया जाना चाहिए। इस ऐतिहासिक बोध के बल पर कविता अतीत और भविष्य के संयोजन का काम करती है।

जीवन का अपना एक क्रमिक विकास होता है। उस विकास के मूल में जीवन को लेकर मानव का स्वप्न काम करता है। इसलिए कवित्व जीवन की यात्रा का पाथेय बन जाता है। इस दृष्टि से कवि जीवन का संचालक है, नियंता है। कहा गया है कि कवि की भूमिका पुल की होती है। पुल का एक सामाजिक प्रकार्य होता है, जो जीवन के संचरण को सुगम सरल बनाता है। इस पुल से होकर मनुष्य आगामी समय में सफर करता है और वर्तमान की सीमा को पार करने में वह सफल निकलता है, संभावनाओं के लोक में प्रवेश कर जाता है। कवि की राय में इन संभावनाओं की तलाशी के लिए कविता जीवन की विवेचना करती है। अतएव कविता के अध्ययन के लिए कविता के कलेवर से बाहर हमें निकलना होता है। तब जीवन के यथार्थ और स्वप्न से हमारी मुलाकात होती है। कविता के बाहर व्यापृत हो जाने का तात्पर्यभौतिक जीवन के स्वस्व को समझना ही होता है। जीवन को समझने की प्रक्रिया वास्तव में काव्यमयी होते हुए भी उसका स्वरूप थोड़ा अलग हो सकता है। विवेचना या आलोचनात्मक प्रकार्य वैचारिक तर्कप्रणाली पर अधिष्ठित होने के कारण

उसका रूप गद्यात्मक हो सकता है। ऐसा होते हुए भी काव्यत्व की दुनिया से वह दूर नहीं रहता है। इसीलिए ही साहित्यिक विधाओं में अंतर लेखक की राय में काव्यत्व की न्यूनाधिकता पर आश्रित है। इसलिए विधाओं को कवित्व की अभिव्यक्ति के विभिन्न प्रकार के रूप में देखना अधिक युक्तिसंगत है। विधा कोई भी हो जीवन के दर्द के साथ कविता का आदिम रिश्ता अवश्य है। काव्य के भीतर समाविष्ट पीड़ा की अभिव्यक्ति हमारे जीवन की मूल्यवत्ता या नैतिक आधार की सीमा को द्योतित करती है या कविता उसी को प्रश्नांकित करती है। सूक्ष्म रूप में कविता के आत्मालोक में विकसित प्रश्नात्मक संवाद सभ्यता के साथ किए जानेवाला संवाद है। उस संवाद से जो रोशनी निकलती है, समझिए कि उतना अंधेरा जीवन से दूर होता चला जाता है। संवाद से विकसित समझ और समस्याओं की सुलझ समाज का अद्यतन लेखा जोखा है।⁶ इससे जाहिर होता है कि दुख से आहत मनुष्य के साथ रहकर उसके बचाव को एकांत का काव्य बोध अपने केंद्र में रखकर बात करती है। इसलिए ही कविता एक थके और पराजित मनुष्य की आवाज़ है, उसमें फिर से उठने और जूझने का संकल्प निहित है।⁷

कविता के आत्मपक्ष में ओस की एक बूंद को बचाने का दृढ़ संकल्प है। यह बूंद एकांत की भाषा में हृदय की तरलता से भिन्न कोई दूसरा तत्व नहीं है। यही तरलता मानव की सर्जनशील चेतना को उद्धृत करती है, आंतरिक-बाह्य प्रकृति से मिलाती है। यही कलाकार की संवेदनशीलता का कराबार है। कवि के भीतर की यह संवेदनशीलता अपने परिवेश को, खुद को जानने की प्रक्रिया का पहला कदम है। संवेदनशीलता का सरोकार ज्ञान से है, क्योंकि उस शब्द की व्युत्पत्ति 'विद्' धातु से हुई है। संवेदनात्मक ज्ञान के माध्यम से कलाकार की चेतना का जुड़ाव और लगाव इस जगत के साथ विकसित होता है। यह एकांत के लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि मानव की संस्कृति एवं सभ्यता का धरातल इसी संवेदनात्मक ज्ञान पर अधिष्ठित है। ओस की एक बूंद

(हृदय की तरलता) देखने में सारहीन लगती हो, पर इसके अभाव में जीवन का भवन खंडहर हो जाएगा। कविता का आत्मकथ्य यही है कि तरलता का अभाव जीवन में रिक्तता भर देगी और वह रिक्तता जीवन को सारहीन बना देगी। ओस की एक बूंद के बल पर दुनिया के कण-कण में सौंदर्यात्मक विस्तार का आग्रह एकांत बीच-बीच में प्रकट करते रहते हैं। यह सौंदर्य जीवन में परितोष का संचार करता है, जीवन को नए ढंग से रचने की योजना बनाता है। जीवन को रचने का मतलब जीवन के सत्तात्मक संबंधों में परिवर्तन करना होता है। जब सत्ता का लोकतंत्रात्मक वितरण संभव नहीं हो पाता है, तब कविता ज़ोरों बोल उठती है, क्योंकि कविता का आत्मानुभव यही है कि सत्ता की विकरालता ही जीवन की विकरालता का कारण बनती है। अतएव सत्ता के चक्रव्यूह में फँसे आदमी के बचाव का संकल्प कविता करती है और मुक्ति के रास्ते को वाणी देती है। इस संकल्प को साकार करने के लिए कविता अपने भीतर एक विशिष्ट प्रकार की नैतिकता के आधार को विकसित करती है। आज के विभीषिकामय, भूमण्डलीकृत, बाज़ारवादी भंवर में फँसा मानव भीतर संवेदनशून्य होकर खोखला होता जा रहा है। इससे बचने हेतु कविता अपने पाठक को दवा की एक खुराक पिला देती है, ⁸ ताकि मानवता बच जाए, जीवन में सुंदरता आ जाए।

मानवता बाहरी दुनिया के साथ मानव के सकारात्मक लगाव से भिन्न कोई तत्व नहीं है। वह मानव के मन की सुगंध है, यह लगाव (प्रेम) कविता की वाणी में स्निग्धता भर देता है और उसे सुरभिल बना देता है। इसलिए कविता के शब्द प्रभात की भैरवी की तरह मानव को प्रेमोन्मुख बनाता है। इसलिए कविता अमानवीय बनानेवाली ताकतों के प्रतिपक्ष में, अर्थात् प्रेम के पक्ष में खड़ी रहती है। प्रेमपंथ का अनुसरण करके ही कविता जीवन में सौंदर्य, मूल्य, नैतिक संपदा का विकास करती है। अतः एकांत श्रीवास्तव कहते हैं किसी भी भाषा की कोई भी कविता अपने गंभीर मूलार्थ में प्रेम कविता ही है। प्रेम के बिना किसी भी कला का सृजन नहीं किया

जा सकता। एक मनुष्य और एक कवि जो अपने घर-परिवार, अपनी धरती, प्रकृति, जीवन, समाज और समय से प्रेम करता है, वही कुछ रच सकता है। अपने व्यापक अर्थ में प्रेम संवेदनशील मनुष्यता के आत्मीय विस्तार का ही पर्याय है।⁹

कविता जीवन की सर्जना विचार के बल पर करती है। हरे पत्तों में क्लोरोफिल की तरह विचार कविता में एकाकार है अपनी कुछ काव्यगत शक्तों के साथ।¹⁰ इसलिए ही कविता आलोचना की वस्तु (वैचारिकता) के रूप में बदल जाती है, क्योंकि उसमें जीवन को नवीन आलोक में व्याख्यापित करने की वैचारिक संकल्पना है। आलोचना शब्द भी अपने आप में लोचन (नेत्र) के साथ रिश्ता जोड़ता है, जो जीवन की दृष्टि (विचारधारा) का परिचायक है। इसके गर्भ में जीवन को सुंदर ढंग से व्यवस्थित करने का भाव सुरक्षित है, यही कविता की राजनीति होती है। यह राजनीति किसी भी हालात में तानाशाही, हिंसा, सांप्रदायिकता को पुष्ट नहीं कर सकती है, भेद का समर्थन नहीं कर सकती है। वह हमेशा जीवन को लोकतंत्रात्मक बनाने की कोशिश अपने प्रेमदर्शन के बल पर करती है। इसलिए कविता के कलेवर का लोकतंत्रात्मक होना अचंभे की बात नहीं हो सकती है। असल में कविता जीवन को नए सिरे से बनाने की कल्पनात्मक वैचारिक बहस का नाम है। ऐसी बहस जीवन की गतिशीलता और प्रगतिशीलता को त्वरित करती है। ज़िंदगी में हम यह पाते हैं कि निस्संदेह काल्पनिक सत्य और वैज्ञानिक सत्य दोनों समान रूप से ज़िंदगी की रचना के कारक तत्व के रूप में काम करते हैं, पर किसीका वर्चस्व जीवन को संपुष्ट नहीं करता है, क्योंकि वर्चस्व का अंगीकार लोकतंत्रात्मक का अंगीकार नहीं होता है। वर्तमान पूंजी द्वारा संचालित जीवनचर्या पर टिप्पणी करते हुए एकांत का कहना है कि कविता सभ्यता के केंद्र से धन को (उसके वर्चस्व को) खारिज कर वहाँ मनुष्य और उसकी मनुष्यता को स्थापित करने का प्रयत्न करती है।¹¹

कविता अपने स्वभाव से कालयात्री है। कविता की घड़ी का पेण्डुलम समय के तीन ध्रुवों पर एक साथ अपने घण्टे बजाता है। स्मृति और स्वप्न के बीच कविता वर्तमान होती है।¹² कविता स्मृति और स्वप्न के दो ध्रुवों के बीच झूलती रहती है। दो बांस स्मृति की भूमि पर गड़े हैं और दो स्वप्न की भूमि पर। दोनों के बीच धधकता हुआ वर्तमान है। इस धधकते वर्तमान के ऊपर तनी हुई रस्सी पर कवि को नट की तरह केवल एक बांस के सहारे संतुलन बनाते हुए चलना पड़ता है। दूसरा और बीच का कोई रास्ता नहीं। जो आगे का मार्ग प्रशस्त करता है वह स्मृति नहीं कोई स्वप्न होता है। स्वप्न भविष्य की रूपरेखा है। कविता स्मृति से आरंभ होती है और वर्तमान को पार करती हुई एक स्वप्न तक पहुँचती है।¹³ कवि का दृष्टिकोण यही रहा है कि भूतकाल के अनुभव, वर्तमान की अनुभूति और भविष्य का सपना कविता के उपजीव्य हैं। दूसरी भाषा में कविता व्यापक जीवन की अनुभूतियों का घनीभूत रूप है। मनुष्य की वर्तमानता में स्मृति के रूप में भूतकाल के अनुभव नए रूप में साकार हो उठते हैं। ऐसे संदर्भ में ऐतिहासिक स्मृति वर्तमानता का रूप धारणकर मानव के कार्यकलापों को नियंत्रित करती है। जब स्मृति वर्तमान में सर्जनात्मक उत्प्रेरणा के रूप में काम आती है, तभी उसका रूप सर्जनात्मक होता है। वर्तमान के स्वरूप को, उसकी ऐतिहासिक प्रक्रिया को समझने के लिए अतीत का सफ़र कविता को करना पड़ता है। इससे ही स्वस्थ काव्यात्मक दर्शन का विकास संभव होता है। अनुभव अपनेआप में भूतकाल का हिस्सा होते हुए भी उसके साथ किया जानेवाला सर्जनात्मक परिचर्चा सौंदर्यजन्य रूप में अभिव्यक्त होकर कविता का रूप धारण करती है। लगता है कि कवि के इतिहास बोध के मूल में स्वस्थ विचार (ज्ञान) काम करता है। इसी ज्ञान की आधारभूमि पर ही संवेदना का सृजनात्मक खेल चलता है, कविता इस खेल का परिणाम है।¹⁴ कविता की संपदा उसका विचार है।¹⁵ लेकिन गहन अनुभूति और संवेदना के अभाव में ज्ञान के बल पर मात्र काव्य

लेखन एक मरीचिका मात्र है। विचार और संवेदना (अनुभूति) की विराटता में प्रदीर्घ से प्रदीर्घ काव्ययात्रा करना कवि के लिए संभव हो पाता है। एक राजगीर का गारा मिट्टी और जल से तैयार होता है और कवि विचार की मिट्टी में संवेदना का जल मिलाकर इसे तैयार करता है।¹⁶ कविता ज्ञान की विपन्नता का नाम नहीं है, वरन् वैचारिक समृद्धि और काल्पनिक वैभवमयता का प्रमाण है, जिसके साथ हमारी संवेदनात्मक और रागात्मक संपृक्ति रहती है।¹⁷ इससे सच्चे जीवनावबोध का विकास होता है। एकांत की भाषा में कविता का वृक्ष भादो के अंधकार में बार-बार विलीन हो जाता है और वे अनुभव के जुगनू हैं जो बार-बार इसे आलोकित करते हैं।¹⁸

कवि कल्पना का प्रणेता होता है। कल्पना कविता की प्राणवत्ता है। जब हमारा सांस्कृतिक बोध रूढ़िग्रस्त होकर निष्क्रियता का शिकार हो जाता है तब कविता की कल्पना सक्रिय हो उठती है। रूढ़िग्रस्तता जीवन की परिधि का पर्याय है। ऐसे में कल्पना इस परिधि का अतिक्रमण है। इसे सत्य के निर्वैयक्तिकरण की प्रक्रिया कही जा सकती है।¹⁹ उन्नत विचार और कल्पना के चुंबकीय संयोग से अनुभव और कल्पना की वैयक्तिकता विनष्ट हो जाती है। कवि का वैयक्तिक अनुभव सामान्यीकृत होकर सार्वभौमिक अनुभूति का रूप धारण करता है। यथार्थ के पिंजरे में कैद पंखी बंधनमुक्त होता है।²⁰

कविता इसलिए रूढ़िबद्ध जीवन की मुक्ति या मुक्ति संग्राम का नाम है। वह जड़वत् मान्यताओं से मनुष्य को आज़ाद करती है। कल्पना जीवन के यथार्थ से पल्लवित होती है, यही कविता की दीर्घायु होने का, विस्तार पा लेने का आधार है। सीमित यथार्थ की परिधि से निकलकर जीवन का यथार्थ जब कल्पना संपृक्त हो जाता है तब हमारे सांस्कृतिक बोध नूतन विधान प्राप्त करता है। कविता हरगिज पलायन का नाम नहीं है, वह जीवन को सुंदर बनाने का उपक्रम है। कविता से ही जीवंत सौंदर्य संवलित सत्य तीक्ष्ण रूप में प्रतिभासित एवं संप्रेषणीय होता है। विज्ञान की कल्पना से जीवन

का भौतिक धरातल सुख-सुविधाओं से पूर्ण हो उठता है तो काव्यात्मक कल्पना से मनुष्य का नैतिक साहस उन्नत होता है। अपने विचारों के प्रतिपादन के संदर्भ में प्रकृति को काव्य के उपकरण के रूप में कवि स्वीकार भी करते हैं।²¹

एकांत कविता और भाषा पर विचार करते हुए कहते हैं कि कविता भाषा का चमत्कार है। कविता के प्रत्येक शब्द में भावालोकित जादूई प्रभाव रहता है। कविता की भाषा गढ़ी हुई, नकली नहीं हो सकती है। काव्यत्व की पुष्टि के लिए कलाकार अपनी भाषा को लोक रंग में डबो देता है। वह पहचानता है कि लोक की भाषा में सादगी की प्राणवत्ता है, अनुभूति की गर्मी है। उससे ही कविता को सब की स्वीकृति प्राप्त होती है। इससे अनुभूति की अभिव्यंजना में गंभीरता-सुंदरता आ जाती है। एकांत श्रीवास्तव निराला की काव्यात्मक शब्दावली के आलोक में इस पर विचार करते हुए कहते हैं। भाषा देह होती हुई भी केवल देह नहीं है। वह काव्यात्मकता से दीप्त और प्राणवान है। बिंबों और प्रतीकों के माध्यम से वह उस स्नेह निर्झर को बचाए रखने का प्रयत्न करती है, जिसके बह जाने के बाद उसके रेत ज्यों तन रह जाने की आशंका है।²² सार इतना है कि कविता की भाषा, भाषा को नश्वरता से पार करा देती है। भाषा में कविता बची हुई है और कविता में हमारे समय और इतिहास का एक बेमालूम-सा दिखाई देने वाला कंपन भी दर्ज है।²³ कविता की भाषा में जीवन के सुख-दुख, सौंदर्य और संघर्ष की प्रामाणिक, सजीव और कलात्मक अभिव्यक्ति ही सच्ची काव्यात्मक भाषा का प्रतिमान बन सकती है, यही एकांत का काव्यदर्शन है।

संदर्भ :

1. जगूड़ी, लीलाधर; रचना-प्रक्रिया से जूझते हुए; नयी दिल्ली, वाणी प्रकाशन; 2015, पृ. 53. मुद्रित.
2. श्रीवास्तव, एकांत; कविता का आत्मपक्ष; नयी दिल्ली प्रकाशन संस्थान; 2006, पृ. 15. मुद्रित.
3. दुबे, अभय कुमार; समाजविज्ञान, विश्वकोश (खंड 6); नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2015, पृ.

1883. मुद्रित.

4. कमल, अरुण; कवि, कविता और समाज पर अंधाधुन्ध टिप्पणियाँ; आलोचना; सहस्राब्दी अंक 12. (2003) पृ. 23. मुद्रित.
5. जगूड़ी, लीलाधर; रचना-प्रक्रिया से जूझते हुए; नयी दिल्ली, वाणी प्रकाशन; 2015, पृ. 117118. मुद्रित.
6. श्रीवास्तव, एकांत; कविता का आत्मपक्ष; नयी दिल्ली, प्रकाशन संस्थान; 2006, पृ. 21. मुद्रित.
7. वही, पृ. 30. मुद्रित.
8. वही, पृ. 124
9. वही, पृ. 49
10. वही, पृ. 129
11. वही, पृ. 22
12. वही, पृ. 17
13. वही, पृ. 32
14. वही, पृ. 152
15. वही, पृ. 127
16. वही, पृ. 25
17. वही, पृ. 64
18. वही, पृ. 64
19. वही, पृ. 38
20. वही, पृ. 38
21. प्रकृति से जीवनबोध कम नहीं होता बल्कि तीव्र और गहन रूप में प्रकट होता है। प्रकृति के प्रति कवि की उदासीनता से मशीनीकृत यांत्रिक कविता का जन्म होता है। श्रीवास्तव, एकांत; कविता का आत्मपक्ष; नयी दिल्ली प्रकाशन संस्थान; 2006, पृ. 33
22. वही, पृ. 23
23. वही, पृ. 24

◆ शोधार्थी

कोच्चिन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
* प्रोफेसर, हिंदी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय
केरल राज्य।



रामधारी सिंह दिनकर की 'परदेशी' कविता में सांसारिक जीवन की विडंबना एवं क्षणिकता

डॉ.राजू सी.पी

श्री रामधारी सिंह दिनकर हिन्दी साहित्य जगत के प्रमुख कवि एवं निबंधकार हैं। वे सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय धारा के ओजस्वी कवि हैं। अपने साहित्य जीवन के आरंभ में दिनकरजी ने छायावाद के प्रभाव में आकर कुछ कविताएँ लिखी थीं, किंतु धीरे-धीरे वे उससे मुक्त होकर अपनी नई दिशा का निर्धारण किया। उनकी कविताओं में विश्व मानव के मंगल की कामना अभिव्यक्त हुई है। उनकी प्रगतिशीलता किसी वाद विशेष में बंधकर नहीं चलती है। उनका जीवन-दर्शन निजी अनुभव पर आधारित है। उनमें अभिव्यक्ति की तीव्रता के साथ चिंतन-मनन भी है। भावानुकूल भाषा के प्रयोग में वे सिद्धहस्त हैं। उनका प्रथम काव्य संग्रह 'रेणुका' है। कुरुक्षेत्र, उर्वशी, रश्मि, हुंकार, संस्कृति के चार अध्याय, हाहाकार और परशुराम की प्रतीक्षा आदि उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। 12 साल तक वे राज्यसभा के मनोनीत सदस्य रहे हैं। साहित्य अकादमी पुरस्कार, पद्म भूषण, ज्ञानपीठ आदि अनेक पुरस्कारों से सम्मानित हैं।

'परदेशी' कविता में कवि ने संसार की विडंबना एवं क्षणिकता का चित्र प्रस्तुत किया है। कभी परदेशी को उपदेश देते हैं कि इस मायावी जगत के मार्ग पर बड़ी सावधानी से आगे बढ़े। यहाँ प्राणी पीड़ा में जल रहे हैं। प्राण देने पर ही जीवन और मृत्यु के मूल्य का पता चलता है। यहाँ परदेशी आत्मा का प्रतीक माना जा सकता है, क्योंकि वह परमात्मा का तत्व है और मूल रूप में कलंकहीन और परिशुद्ध है। कवि परदेशी से कहते हैं, हे परदेशी, माया के जाल में पड़े इस संसार की कहानी मैं कैसे सुनाऊँ? तुम नासमझ और निष्कलंक हो। यहाँ की कहानी सुनकर शायद तुम परिहास करोगे। कविता के आरंभ में ही कवि ने इस प्रकार की अपनी आशंका व्यक्त किया है-

माया के मोहक वन की क्या कहूँ कहानी परदेशी?
भय है, सुन कर हँस दोगे मेरी नादानी परदेशी! ¹

दिनकरजी का कहना है कि संसार की बातें बिल्कुल विचित्र है। यहाँ सृष्टि में ही विनाश छिपा है। सांसारिक वस्तुओं की क्षणिकता एवं लोगों के मन में होनेवाले परिवर्तन के कई उदाहरण हैं। पेड़-पौधों पर फूल विकसित होकर कुछ ही देर में गिर जाते हैं। हमारे साथ रहनेवाले लोग बुरे दिन आने पर प्रतिपक्षी हो जाते हैं। मित्रता के शीतल जंगल में कपटता की जड़े छिपी रहती हैं। कविता में दिनकरजी परदेशी को बता देते हैं कि इस माया संसार के मार्ग से बड़ी सावधानी से आगे बढ़ना है। मेनका जैसी अप्सराओं की वक्रता से चित्त मोहित न होना चाहिए, उनसे बचकर बहुत सावधानी से आगे बढ़ना है। कविता में कवि ने इस प्रकार का चित्रण किया है-

इस उपवन की पगडंडी पर बचकर जाना परदेशी।
यहाँ मेनका की चितवन पर मत ललचाना! ²

कवि दिनकरजी इस बात पर सहमत हैं कि सांसारिक जीवन में मस्ती है, किंतु वह क्षणिक एवं क्षीण होनेवाली है। सांसारिक आकर्षणों से कभी पूर्ण तृप्ति नहीं मिलती। उनका कहना है यहाँ की सुंदरता शाश्वत नहीं। सौन्दर्य केवल माया का प्रभाव है। यहाँ की बाल-युवतियों के आलिंगन से भी संतोष नहीं मिलता। प्रिय के आगमन की प्रतीक्षा में भी हमें संतोष नहीं मिलता। यहाँ सभी जीवधारी महान विनाश की ओर अग्रसर हो रहे हैं। सभी अपनी-अपनी पीड़ा की महाज्वाला में जल रहे हैं। अंत में चिंता रूपी दीपक में जीवन जल जाता है। यह भी देखा है कि सिकंदर जैसे विश्व विजेता

को भी संसद से अंतिम विदा लेते समय पछताना पड़ा था।

सांसारिक जीवन की विचित्रताओं की चर्चा करके कवि दिनकरजी कहते हैं कि यहाँ प्राण देने पर ही मौत के मूल्य का पता चलता है। संसार की नश्वरता पर रोते हुए भी सभी यहाँ से चले जाते हैं, कोई चिता के रथ पर चढ़ जाता है और कोई कब्र की ओर जाता है। मृत्यु के बाद मित्र, पुत्र, माता आदि सभी के रिश्ते टूट जाते हैं। उस समय अपने सगे संबंधियों के साथ एक क्षण के लिए भी रुक नहीं सकता। लैला रोती रहती है। मसजिदों से मुँह मोड़कर दुनिया से विदा हो जाता है। कितनी प्रेमिकाओं ने अपने प्रेमियों की मृत्यु दुखपूर्ण नेत्रों से देखा है, जो रो-रोकर अपने-अपने प्रेमियों को अंतिम विदाई दी है। कवि ने इसका चित्रण कविता में इस प्रकार किया है-

स्के न पल-भर मित्र, पुत्र माता से नाता तोड़ चले,
लैला रोती रही किन्तु, कितने मजनूँ मुँह मोड़ चले।³

कवि दिनकरजी परदेशी से कहते हैं- हे परदेशी, सांसारिक जीवन का मधुर उल्लास, यौवन की मस्ती एवं हँसी-क्रीड़ा रूप का गौरव यह सब केवल सपना है। अनजाना स्वप्न के समान नश्वर है। इस पर गर्व करना मूर्खता है। संसार में यह प्रेम कुछ ही देर में मिट जाता है, सुंदरता नष्ट हो जाती है। हरे भरे, फूलों से भरे जीवन की क्यारी एक-एक कर उजड़ जाती है। इसलिए इन लौकिक आकर्षणों के वश में कभी न जाना।

लौकिक जीवन की क्षणिकता के बारे में सोचकर अंत में कवि कहते हैं कि मैं इस भूमि की सतह पर न रहूँगा। जीवन, यौवन और प्रेम को खोकर मैं इस पृथ्वी पर न ही रुकना चाहता हूँ। वायु, तुम मुझे उड़ाकर संसद से कहीं बाहर ले चलो। यहाँ कोमल बच्चे तक मर जाते हैं, जवानी जोश नहीं रहती इसलिए माया के मुख जाल में फँसे इस संसार की कहानी सुनाने में मैं बिल्कुल असमर्थ हूँ। कविता के अन्त में दिनकरजी कहते हैं-

मरते कोमल वत्स यहाँ, बचती ना जवानी परदेशी !

माया के मोहक वन की क्या कहूँ कहानी परदेशी? ⁴

‘परदेशी’ कविता के माध्यम से श्री रामधारी सिंह दिनकर जी ने संसार की नश्वरता की ओर प्रकाश डाला है। साथ ही यहाँ के ढोंग, छल-कपटता आदि की ओर भी संकेत किया है। कवि का कहना है कि छल-कपट पूर्ण इस संसार में भोले-भाले लोगों को जीना आसान नहीं, बहुत मुश्किल है।

संदर्भ :

1. पृष्ठ संख्या 91, ‘परदेशी’ कविता, दिनकर के गीत
2. वही
3. पृष्ठ संख्या 92, वही
4. वही

संदर्भ ग्रंथ :

1. परदेशी कविता; संकलन-दिनकर के गीत, रामधारी सिंह दिनकर, प्रकाशन : लोकभारती प्रकाशन, वर्ष 2019
2. पद्य प्रवाह; चतुरानन; अमृता बुक्स, कुन्नमकुलम, केरल; 1195

◆ अध्यक्ष

हिन्दी विभाग

सेंट अलोष्यस कॉलेज

तृशूर,

केरल-680611

मोबाईल-8330080066

सूचना : NET (हिन्दी) तथा Spoken

Hindi

की कक्षाओं में प्रवेश पाने को

इच्छुक व्यक्ति संपर्क करें -

फोन : 9946253648, 0471 - 2332468



आदिवासी साहित्य का अर्थविज्ञान

♦ डॉ मधु वासुदेवन

साहित्य के प्रगतिशील मूल्य की पहचान है, प्रतिरोध। आदिवासी साहित्य हिंदी के प्रतिरोधात्मक साहित्य की विशिष्ट धारा है जिसके माध्यम से आदिवासी जीवन के संघर्ष सर्जनात्मक परिचय प्राप्त होता है। आदिवासी जीवन की व्याप्ति को प्रतिबिंबित करने में और उसकी संस्कृति विविधता को संप्रेषित करने में आदिवासी साहित्य ऐतिहासिक भूमिका अदा कर रहा है। समकालीन आदिवासी साहित्य इसका साक्ष्य है कि आदिवासी लेखकों की व्यापक उपस्थिति हिंदी साहित्य की प्रतिरोधी चेतना को नया उन्मेष प्रदान करा रहा है। वह समय की सहज प्रतिक्रिया इसलिए है कि आजकल विकसित प्रभुजाति एक ऐसा वातावरण तैयार करती है कि बदलती परिस्थितियों में उस कमजोर जाति के लोग ऐसी हीनग्रंथि से ग्रसित हो जाते हैं कि वे अपनी भाषा, संस्कृति, परम्परा, रीति-रिवाज़, जीने के ढंग, अपने इतिहास आदि को हीनभाव से देखने लगते हैं।¹ आदिवासी लेखक इस स्थिति पर काफी चिंतित हैं। अतएव आदिवासी रचना में जीवन को सकारात्मक दृष्टि से देखने परखने की प्रवृत्ति बड़ी मात्रा में दिखाई देती है जो तत्कालीन हिंदी साहित्य को उचित दिशा निर्देश उपलब्ध कराता है।

बीज शब्द : आदिवासी साहित्य, शोषण, अस्मिता। प्रगतिशील रचनार्थमिता से संजात यथार्थ बोध को आदिवासी साहित्य नए सामाजिक सन्दर्भ में पेश करता है। शताब्दियों से शोषित आदिवासी लोगों के कष्ट जीवन का विवरण आदिवासी रचना की सामान्य विषय वस्तु बन गया। वर्षों से विस्थापन की चुनौती का सामना करनेवाली जनजाति की भयावह मानसिकता उसमें उभरने लगी। अपने स्वत्व को संभालने के कठिन प्रयास के कारण आदिवासी रचनाशीलता का

प्रतिरोधात्मक स्वर प्रखर हो गया। आज आदिवासी समाज के लिए तो यह भारी चुनौती है कि वह अपने लायक और अपनी संवेदनात्मकता के अनुरूप इतिहास का अभिलेखीकरण करे तथा आरोपित इतिहास दृष्टि से भी अपने को मुक्त कर ले।² विकासवाद के नाम पर जो शोषण उनपर सदियों से चल रहा है उसके दस्तावेज़ के रूप में आदिवासी साहित्य परिवर्तित हो गया। आत्माभिव्यक्ति या आत्मा प्रकाश के अनेक स्वरूप प्रदर्शित हुए जिनमें आदिवासी रचनाकार की सृजनात्मकता के व्यापक उदाहरण देखने को मिलते हैं।

फिलहाल साहित्य की समस्त विधाओं में आदिवासी साहित्य की उपस्थिति दिखाई देती है। तेजिन्दर सिंह गगन, निर्मला पुतुल, हरिराम मीणा, महादेव टोप्पो, विनायक तुमराव, उषा किरण आत्राम, मंजु ज्योत्सना, कोमल वाल्टर, पीटर पाल एक्का, (कहानी) भगवानदास मोखवाल, गोविन्द गारे, भुजंग मेश्राम, नेताजी राजगडकर, कुंडलीक केदारा, चामुलाल राठवा, वीरसिंग पाडवी, दुर्गा भागवत, नागगौंड, सुदाम जाधव, इन्दूताई परलेकर, अनुताई वाघ, दिनानाथ मनोहर, जगदीश गोड़बोले, शरद पाटील आदि आदिवासी सृजन शीलता के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। हिंदी साहित्य की मुख्या धरा में उनको सर्वथा स्वीकृति मिल चुकी है। कथा साहित्य की तरह समकालीन आदिवासी साहित्य में कविता को भी उचित स्थान प्राप्त हुआ है जो अधिक सरल, संवेदनात्मक, प्रभावी एवं लोकप्रिय है। आज की आदिवासी कविता मुख्यतः अपनी अस्मिता की तलाश करती है। जीवन को शोषण एवं उत्पीड़न की श्रृंखला से मुक्त करने का प्रबल आग्रह उसमें प्रकट होता है। समय से सदा संघर्ष करने के लिए आदिवासी कविता विवश हो जाती है। आदिवासी कविता से स्वतन्त्रता, समता, बन्धुता, विज्ञाननिष्ठा, भूख, वर्ण,

जाति, वर्ग का अन्त, मानवता आदि मूल्यों का विकास धीरे-धीरे होता हुआ दिख रहा है।³ चिंतन की प्रखरता के बावजूद व्यंजना की शालीनता और भाषा की विनम्रता उसके रचनात्मक रीतिशास्त्र का परिचय देता है।

आदिवासी कविता के आंतरिक सत्य, सौंदर्य एवं स्वरूप की पहचान तब संभव हो जाता है जब आदिवासी समाज की समस्याओं का वस्तुनिष्ठ परिचय उपलब्ध हो जाता है। आदिवासी कवियों की दृष्टि में कविता अपने तेज विचारों को प्रकट करने का उचित साधन है। ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक बोध से संचालित आदिवासी कविता शोषण एवं अपसंस्कृति के नैरंतर्य को उद्घाटित करती है। आदिवासी कवि चाहते हैं कि उनकी रचना हर शब्द में अपनी मिट्टी और पानी से संपर्क बनाई रखे और परंपरा से पर्याप्त उन्मेष ग्रहण करे। इसी कारण से विस्थापन से जुड़ी हुई विभिन्न संकीर्णताएँ आदिवासी कविता का केंद्रीय विषय बन गयी हैं। अपनी जन्म स्थली से उखाड़ दी गई जनता के संघर्ष और संकट को भाषांतरित करने में जो उत्साह उन्होंने दिखाया है वह उनकी कविता को स्वाभाविक सौंदर्य प्रदान करता है। शोषणचक्र के ऐतिहासिक संदर्भ को पाठक वर्ग के सामने पेश करने में आदिवासी कविता अत्यंत सफल हुई है। जागरूक की सहज विवेक सहित मानवीयता की विविध प्रवृत्तियाँ उसमें संकलित हैं। वह अपनी क्षेत्रीयता की सीमा के बाहर सार्वजनिक एवं सार्वभौमिक अनुभव की श्रृंखला को प्रस्तुत करती है जो साहित्य की सामाजिक संपृक्ति के नए द्वार खुल देती है। आदिवासी साहित्य की इस विपुलता को देखकर आलोचक आदिवासी साहित्य को ऐसे दो भागों में विभाजित करते हैं-लिखित और अलिखित।⁴ पढ़ा-लिखा आदिवासी अपनी लेखनी से या अपनी कलाकृति से आदिवासी जीवन के मूल्य की छाप उभारता है और अलिखित साहित्य से आदिवासी जीवन संस्कृति का दर्शन होता है।

फिलहाल आदिवासी अस्मिता को चुनौती देनेवाले

विकासवाद के खिलाफ सहज जागृति उत्पन्न हुई है जिसको आदिवासी लेखक सृजनात्मक नेतृत्व दे रहे हैं। आदिवासी समुदाय की अस्मिता को बनाये रखने के लिए संघर्षरत आदिवासी साहित्य मानवीय सौहार्द के विशिष्ट दर्शन को संप्रेषित करने में भी विशेष रुचि रखता है। आदिवासी साहित्य की सभी धाराओं में प्रदर्शित लोक हित की भावना के कारण आजकल आदिवासी साहित्य के प्रति पाठक वर्ग के अंतर्मन में नए उन्मेष और उत्साह उत्पन्न हुए हैं। पश्चिमी सभ्यता का व्यापक प्रभाव, नयी आर्थिक नीति की धमकी, संस्कृति का बाज़ारीकरण, राजनीतिक मूल्यशोषण आदि से उत्पीड़ित जनता के मन में आस्था के दीप जलाने के रचनात्मक कार्यक्रम में आदिवासी साहित्य भी ऐतिहासिक भूमिका निभा रहा है। इसलिए निस्सन्देह हम कह सकते हैं कि सभी प्रकार के संकोच एवं संकीर्णता से ऊपर उठकर व्यापक मानवीयता के संदर्भ में साहित्य को व्याख्यायित करने की क्षमता से समृद्ध वर्तमान आदिवासी साहित्य भावी साहित्य के घोषणापत्र की रचना में उचित सहयोग दे रहा है। उसके माध्यम से साहित्य की तरफ मन की दृष्टि से देखने का असाधारण रूपक निर्मित हो रहा है।

1. महादेव टोप्पो, कुचले जाते आत्मसम्मान के विरुद्ध, आदिवासी कौन, सं. रमणिका गुप्ता; राधाकृष्ण प्रकाशन, 2016; पृ.41
2. अशोक सिंह, आदिवासी समाज की पारम्परिक संस्कृति का वर्तमान सच, आदिवासी कौन, सं. रमणिका गुप्ता, पृ. 107
3. डॉ.राजेन्द्र ठाकरे, आदिवासी साहित्य यात्रा, सं. रमणिका गुप्ता, पृ.72
4. वाहरूसोनवणे, आदिवासी कौन, सं.रमणिका गुप्ता पृ.20

♦ असोसियेट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग

महाराजास कॉलेज, एरणाकुलम।

आधुनिक समाज में पिण्डदान अनुष्ठान की सार्थकता और निहित मनोविज्ञान



♦ पियुष देउरकर

सार - पिण्डदान अनुष्ठान का भारतीय समाज में एक विशेष स्थान है। प्रत्येक वर्ष इस अनुष्ठान को सम्पन्न करवाने के लिए देश एवं विदेश से हज़ारों की संख्या में तीर्थयात्री गया (बिहार, भारत) आते हैं। यह विदित है कि भारतीय समाज एवं संस्कृति पर काफी बड़ी संख्या में शोधकार्य सम्पन्न किये गये हैं, परन्तु पिण्डदान अनुष्ठान पर व्यवस्थित अध्ययन कम ही हुए हैं, जिसे ध्यान में रखकर इस शोध आलेख को प्रस्तुत किया जा रहा है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य आधुनिक भारतीय समाज में पिण्डदान अनुष्ठान की सार्थकता एवं इसमें निहित मनोविज्ञान पर प्रकाश डालना है। पिण्डदान की अवधारणा के अन्तर्गत कई मनोवैज्ञानिक पहलू निहित होते हैं, जैसे- विश्वास, चिंता, दुख से मुक्ति, परिवार के पूर्वजों के प्रति परोपकार की भावना आदि। इस शोध आलेख के माध्यम से शोधकर्ता यह आशा करते हैं कि भविष्य में इससे संबन्धित अध्ययन एवं तीर्थयात्रियों के लिए बननेवाली नीति निर्माण के कार्य में सहायता मिलेगी।

बीज शब्द-अनुष्ठान, पिण्डदान, मनोविज्ञान, समाज, संस्कृति।

प्रस्तावना : भारत विश्व में अपनी धार्मिक एवं आध्यात्मिक संस्कृति एवं सभ्यता के पोषक के रूप में प्रसिद्ध है। भारतीय संस्कृति “सर्वे भवन्तु सुखिन। सर्वे सन्तु निरामया। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु। मा कश्चिद् दुख भागभवेत्।।” की अवधारणा से ओतप्रोत है, जिसका तात्पर्य है कि सभी सुखी रहें, सभी रोगमुक्त रहें, सभी का जीवन मंगलमय बनें और कोई भी दुःख का भागी न बने। भारतीय संस्कृति में इस श्लोक के माध्यम से सभी प्राणियों के कल्याण की बात की जाती है, चूँकि हमारी संस्कृति में मृत्यु के बाद भी जीवन की अवधारणा को माना जाता है। अतएव कल्याण केवल जीवित

व्यक्ति का ही नहीं, वरन् उसकी जीवात्मा का भी हो, इसकी भावना निहित रहती है। इसलिए पिण्डदान अनुष्ठान के माध्यम से व्यक्ति अपने पूर्वजों के कल्याण के लिए भी मार्ग प्रशस्त करने की कामना करते हैं जो कि इस भूलोक में न होकर ब्रम्हाण्ड में भ्रमण करते हैं ताकि जीवात्मा के लिए मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग सुगम हो सके।

भारतीय समाज में आध्यात्मिक एवं धार्मिक स्तर पर अनेक प्रकार के कर्मकाण्ड एवं अनुष्ठान किए जाते हैं। एक महत्वपूर्ण अनुष्ठान के रूप में पिण्डदान अनुष्ठान को भी प्राथमिकता दी जाती है। यह हिन्दू धर्म में प्रचलित पुर्नजन्म की अवधारणा को आधुनिक युग में सार्थकता प्रदान करता है, इसलिए आज के समय में इस अनुष्ठान की प्रासंगिकता केवल हिन्दू धर्म तक सीमित न रहकर वैश्विक स्तर पर बढ़ गई है।

पिण्डदान अनुष्ठान के मनोवैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक कारण :

पिण्डदान अनुष्ठान को प्रायः एक मनोसामाजिक घटना के रूप में देखा जा सकता है। (देउरकर एवं उनके सहयोगी, 2023)। प्रायः पिण्डदान अनुष्ठान की मानवीय पृष्ठभूमि का मनोवैज्ञानिक कारण मानसिक, जुड़ाव, करुणा, मानवीय पीड़ा, नकारात्मक भाव, और अपराध बोध की भावना से मुक्ति को भी माना जा सकता है। प्रायः यह देखा जा सकता है कि वर्तमान समय में भारतीय व्यक्तियों के साथ-साथ विदेशी पिण्डदान तीर्थ यात्रियों की संख्या में भी काफी बढ़ोत्तरी हुई है। यह एकमात्र ऐसा अनुष्ठान होता है, जो मृत व्यक्तियों के लिए किया जाता है ताकि सूक्ष्म शरीर रूपी आत्मा, मोक्ष-प्राप्ति के रास्ते को आसानी से पार कर सके। व्यक्ति यह सोचता है कि अगर उसने जानेअनजाने में मृत

व्यक्ति के साथ अच्छा व्यवहार न किया हो या अपने दायित्व का पूर्ण रूप से निर्वहन न कर पाया हो तो इस विचार से बचने और स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने के लिए वह पिण्डदान अनुष्ठान करवा सकता है।

व्यक्ति परोसामाजिक कार्य में इसलिए सम्मिलित होते हैं ताकि वे स्वयं के नकारात्मक भाव में सुधार कर सकें। इससे संबंधित मॉडल को समाज मनोविज्ञान में नकारात्मक अवस्था राहत मॉडल कहा जाता है (फुल्ट्ज़ एवं उनके सहयोगी, 1988)।

इस मॉडल के अनुसार, व्यक्ति जब जीवित व्यक्ति को समय पर मदद नहीं कर पाता तो उससे उत्पन्न मानसिक अवस्था को दूर करने के लिए कई प्रकार के परोपकारी कार्यों को करता है जिसमें धार्मिक अनुष्ठान भी एक है। इस आलोक में वर्तमान अध्ययन के इस विचार को संपुष्टि मिलती है कि व्यक्ति अपने पूर्वजों के लिए कुछ परोपकारिता करने के उद्देश्य से भी पिण्डदान अनुष्ठान में संलग्न होता है।

अनुष्ठानों के संज्ञानात्मक पहलू

अनुष्ठान एवं कर्मकाण्ड से सम्बंधित विषयों पर शोधकर्ताओं में काफी मतभेद रहा है, फिर भी अधिकांश मानवशास्त्रीय और नैदानिक शोध इस बात पर ध्यान केंद्रित करते हैं कि नकारात्मक भावात्मक अवस्था और अनुष्ठान के बीच सम्बन्ध पाया जाता है (हॉब्सन एवं उनके सहयोगी, 2018)। पूर्व के अध्ययन इस ओर इशारा करते हैं कि भावनात्मक संकट के समय अनुष्ठान करने से नकारात्मक संवेग, पश्चाताप, दुख, चिंता और नकारात्मक आत्मचिंतन में भी कमी देखी गयी। सोसिस और हैंडवर्कर (2011) ने वर्ष 2006 के लेबनान युद्ध के दौरान इजरायली महिलाओं के बीच भजन पाठ की जाँच की, जिसमें उन्होंने पाया कि उन महिलाओं में जो युद्ध क्षेत्रों में रह रही थीं, उनमें अधिक बार भजन पाठ करने व कर्म चिंता के स्तर को देखा गया, जबकि यह संबंध युद्ध क्षेत्रों के बाहर नहीं पाया गया था, जहाँ खतरे का स्तर कम था। ऐसे ही एक प्रयोगात्मक अध्ययन ब्रूक्स एवं उनके सहयोगियों (2016) ने किया, जिसमें उन्होंने पाया कि अनुष्ठान करनेवाले

लोगों में उत्तेजना के कम शारीरिक लक्षण दिखाई दिए। चिंता के समाधान के रूप में व्यक्ति धार्मिक अनुष्ठान को देखता है। नॉर्टन और गीनो (2014) ने इस संबंध में किए गए अपने अध्ययन से प्रदर्शित किया कि जिन व्यक्तियों ने अपने दुःख का प्रबंधन करने के लिए अनुष्ठान किया, वे कम दुखी महसूस करते थे, वे उन व्यक्तियों की तुलना में अधिक नियंत्रण में थे जो अनुष्ठान नहीं करते थे। अंततः यह कहा जा सकता है कि पिण्डदान अनुष्ठान व्यक्ति के प्रियजन के शोक, दुख, चिंता, पश्चाताप और आत्म ग्लानि जैसे नकारात्मक संवेग एवं अवस्थाओं को दूर करने के एक साधन के रूप में कार्य करता है।

पिण्डदान अनुष्ठान और आस्था:

प्रत्येक वर्ष हजारों की संख्या में हिंदू एवं अन्य धार्मिक तीर्थयात्रियों द्वारा पितृपक्ष महोत्सव के दौरान पिण्डदान किया जाता है (विद्यार्थी, 1961)। इस अवधि को हिंदू कैलेंडर में आश्विन महीने (सितंबर-अक्टूबर) के पखवाड़ा को सबसे शुभ मुहूर्त के रूप में भी उल्लेखित किया गया है।

पिण्डदान अब यह हिंदू धर्म के अलावा भी कई अन्य धर्मों के लोगों एवं विदेशियों द्वारा भी किया जाने लगा है। कुछ स्थानीय एवं राष्ट्रीय समाचार पत्रों (टेलीग्राफ ऑनलाइन, 2016; टीओआई, 2016; एएनआई, 2019) द्वारा इस बात की पुष्टि की गई है। दिलचस्प बात यह है कि एक अमेरिकी व्यक्ति को पिण्डदान से संबंधित एक अनोखा अनुभव है। वे कहते हैं कि उन्होंने चार साल पहले अपने बेटे को खो दिया था और तब से अपने बेटे की आत्मा को अपने आसपास महसूस कर रहे थे। जब परेशानी बहुत बढ़ गयी तो उन्होंने पंडित से संपर्क किया, जिसने उन्हें बेटे का पिण्डदान करने की सलाह दी। उसके बाद वह भारत आया और पूरे परिवार के साथ पिण्डदान अनुष्ठान सम्पन्न किया, जिसके बाद से उनकी हिंदू धर्म में गहरी आस्था हो गयी है (हयात न्यूज़, 2021)।

सामुहिक अनुष्ठान और सामाजिक विनियमन:

अनुष्ठान बड़ी संख्या में व्यक्तियों या धार्मिक

समूहों द्वारा किया जाता है जो कि आगे चलकर समकालीन समाज का आधार बनता है (दुर्खीम, 1915; नोरेजयन और शरीफ, 2008)। अनुष्ठान को अक्सर एक शक्तिशाली मध्यस्थ सामाजिक तंत्र के रूप में देखा जाता है। यह व्यक्ति की व्यक्तिपरक स्थिति को सांप्रदायिक सामाजिक व्यवस्था के साथ एकीकृत करता है, जो कि समाज में व्यक्ति के निजी और सार्वजनिक जीवन में एकरूपता लाता है और साथ ही औपचारिक-सामाजिक व्यवस्था को विनियमित करने के लिए भी सहायक है। सामान्यतः एक व्यक्ति सामूहिक अनुष्ठान करते समय समूह के सदस्यों के साथ संबंध रहता है, साथ ही सामाजिक मानदंडों से संबंधित सांस्कृतिक ज्ञान भी अर्जित करता है।

सामूहिक अनुष्ठान द्वारा समूह में एकता की भावना जागृत होती है जिससे वे आपस में मिलजुलकर कार्य करते हैं। प्रायः हिन्दू सामाजिक अनुष्ठानों में भाग लेने के बाद लोगों में दान देने की प्रवृत्ति में बदलाव देखा गया है। (ज़ायगलटस, 2013)।

सामूहिक अनुष्ठान सामाजिक संबंधों को विनियमित करने का महत्वपूर्ण तरीका होता है, जिससे आनेवाली पीढ़ियों को बातचीत के माध्यम से अनुष्ठानों का पालन करने, अनुकरण करने, उन्हें स्थायी सांस्कृतिक मानदंडों और प्रथाओं के बारे में जानने में मदद करता है। अनुष्ठान जीवन की शुरुआत से ही आरम्भ होता है, जिसे व्यक्ति ओवरइमिटेसन अर्थात् निरन्तर अनुकरण से स्वतः सीखते हैं (ल्योन, 2007)।

पिण्डदान अनुष्ठान की सार्थकता: हिन्दू धार्मिक मान्यताओं के अनुसार जब व्यक्ति या जीव की मृत्यु हो जाती है तो उसका स्थूल शरीर तो नष्ट हो जाता है, परन्तु सूक्ष्म शरीर नष्ट नहीं होता है। आत्मा रूपी सूक्ष्म शरीर मृत्यु के बाद यमलोक को चला जाता है (सिंह, 2019)। ऐसा माना जाता है कि यदि मृतक व्यक्ति का पिण्डदान अनुष्ठान किया जाता है तो उसका पुनर्जन्म नहीं होता है, जिससे आत्मा के लिए मोक्ष की यात्रा सुगम हो जाती है। ऐसी भी मान्यता है कि मृत्यु के बाद भी आत्मा का अपने सगे-संबंधियों, रिश्तेदारों और संपत्ति के प्रति

भौतिकवादी झुकाव बना रहता है, जिसके कारण उसका भूलोक को छोड़ पाना अत्यन्त कठिन होता है, वह दुखी और असंतुष्ट होकर इधर-उधर भटकती रहती है और उन भावनाओं को प्राप्त करने का प्रयास करती है, जो कि इस रूप में उसके लिए संभव नहीं हो सकती हैं।

आधुनिक भारतीय समाज में पिण्डदान अनुष्ठान:

आज के आधुनिक एवं औद्योगिक काल में पिण्डदान अनुष्ठान के कर्मकाण्ड एवं कार्य में भी काफी हद तक बदलावों को देखा जा सकता है। आधुनिकता, बाज़ारवाद, शहरीकरण से भारतीय हिन्दू संस्कृति में अनुष्ठानों का अपना एक अलग स्थान है, वे अकारण नहीं हैं वे एक समूह में रहनेवाले व्यक्तियों की विश्वास प्रणाली से आते हैं। बीते कुछ वर्षों में बिहार राज्य सरकार ने विशेष रूप से दिलचस्पी दिखाते हुए पिण्डदान अनुष्ठान को ऑनलाइन सम्पन्न करवाने की व्यवस्था का भी सूत्रपात किया है, फिर भी देखा गया कि कोविड19 वैश्विक महामारी के दौरान भी तीर्थयात्रियों की संख्या में अधिक गिरावट नहीं आयी। इसका कारण यह भी हो सकता है कि यह अनुष्ठान जीवात्मा की शान्ति के साथ-साथ उसके प्रियजन की आत्मिक संतुष्टि एवं भावनात्मक संतुलन में भी मदद करता है। यह अनुष्ठान पीढ़ियों में आनेवाले बदलाव एवं आधुनिकता के बढ़ते स्तर के साथ भी अपनी अस्मिता को आज भी पूर्ण रूप में समेटा हुआ है।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आधुनिक भारतीय समाज में पिण्डदान अनुष्ठान पर हुए अध्ययन में व्यक्तियों द्वारा पिण्डदान अनुष्ठान से जुड़े अनुभवों को साझा करते हुए स्पष्ट किया है कि इससे व्यक्ति और समूह में सामाजिक सहभागिता, भाईचारा, अपनत्व की भावना, पारस्परिक सद्भाव के साथ मनुष्य को शारीरिक, बौद्धिक, और विशेषतया मानसिक रूप से सुख, शान्ति, और आनन्द की प्राप्ति होती है। अतएव पिण्डदान अनुष्ठान सामाजिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय, धार्मिक, आध्यात्मिक और यहाँ तक कि वैश्विक धरातल पर भी सार्वभौमिक रूप से अपनी सार्थकता को बनाया हुआ है।

किसी भी समुदाय की प्रथाओं, रीति-रिवाजों, अनुष्ठानों एवं त्योहारों में परिवर्तन होने पर उसका समाज में गहरा असर पड़ता है। क्योंकि इस प्रकार के क्रियाकलाप समुदाय एवं लोगों की व्यापक सहभागिता पर निर्भर होते हैं। इन क्रियाकलापों के प्रयोजन, नियंत्रण, संवर्द्धन एवं समन्वयन में कुछ व्यक्तिगत एवं सामूहिक संस्थाएँ कार्य करती हैं। इसे सामूहिक भागीदारी के साथ-साथ व्यक्तिगत सहभागिता को भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए (यूनेस्को, 2022)।

संदर्भ :

1. ANI. (2019, September 27). Russian women offered 'pind daan' in Bihar's Gaya. Retrieved from aninews:
2. Brooks, A. W., Schroeder, J., Risen, J. L., Gino, F., Galinsky, A., Norton, M. I., & Schweitzer, M. E. (2016).
3. Durkheim, E. (1915). The elementary forms of religious life. New York, NY: The Free Press.
4. Vidyarthi, L. P. (1961). The sacred complex in Hindu Gaya. Concept publishing company.

Xygalatas, D., Mitkidis, P., Fischer, R., Reddish, P., Skewes, J., Geertz, A. W., & Bulbulia.

5. J. (2013). Extreme rituals promote prosociality. Psychological Science.

6. गाथिया, जे (1946) मीडिया और सामाजिक बदलाव तुलनात्मक परिपेक्ष्य में भूमणलीकरण एवं मानवाधिकार, कॉन्सेप्ट पब्लिकेशन कम्पनी, नई दिल्ली, पृ.0317।

7. सिंह, आर। (2019)। विष्णुपदी पितृतीर्थ गया परंपरा, प्रवृत्ति और संस्कृति। मीनाक्षी प्रकाशन, नई दिल्ली।

◆ शोधार्थी, मनोविज्ञान विभाग, दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया, बिहार (भारत)।

सहप्राध्यापक मनोविज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश (भारत)।

सहप्राध्यापक, मनोविज्ञान विभाग, दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया, बिहार (भारत)।

फ़ोन- 91-9713313335



कोश निर्माण का लंबा इतिहास एवं अनुवादकों का स्थान

◆ डॉ.मोहन वी.टी.वी.

अक्षर की उत्पत्ति तथा विकास के साथ-साथ निघंटु का विकास होता रहा। मगर, उसे कोश के ढाँचे के अंतर्गत नहीं डाला जा सकता। 2600

ई.पू. में सुमेरिया से प्राप्त सामग्रियों के निशानों को प्रथम निघंटु के अंतर्गत माना जा सकता है। उन सामग्रियों को नॉमन क्लेटर्स कहा जाता है। इनमें पेशा, जीव जन्तु, वस्तुएँ आदि का विवरण है, जिसे बाद में लेखकों ने स्वीकार किया था। यूनानी कवियों की भाषा के विकास को ध्यान में रखते हुए यूनानी निघंटुओं का निर्माण भी हुआ था। जूलियस पोलाक्स (Julius Pollux) का हचसचजौबेस, रैनिकस (Phrynichus) का Selected atticism आदि का निर्माण दूसरी सदी में हुआ। अलक्सेंड्रिया के हेसिकस (Hesychius) ने छठी सदी में अपने Onomatologos का निर्माण किया। इसमें विभिन्न भाषा

भेदों के अनेक शब्द प्राप्त थे। इस निघंटु ने यूनानी भाषा साहित्य का खूब परिचय दिया। ई. पू. 218 में रोम के सैनिक तथा लैटिन भाषा के आगमन के साथ स्पानिश निघंटु का जन्म हुआ।¹ ऑगस्टान युग (ई. पू. 27 से सन् 14 तक) में रोम के विद्वानों ने अपनी भाषा के साहित्यकारों, उनकी कृतियों तथा कार्यक्षेत्रों को निघंटुओं का ढाँचा देने का प्रयत्न किया। वेरिस फ्लैकस (Verrius Flaccus) का द वर्बरम् सिग्निफिकेशन (De Verborum Signification) इसका उत्तम दृष्टांत है।

पूर्वी देशों में इस्लाम धर्म बैसान्टीन सभ्यता को वर्चस्वता की चुनौती देने लगा, जिसके परिणामस्वरूप नये निघंटुओं का जन्म होने लगा। नवीं सदी में फोशियस (Photius) ने प्राचीन यूनानी शब्दों का संकलन किया। ओबरे डिलर (Aubrey Diller) ने फॉशियस बिब्लियोतिका

इन बैसैटीन लिटरेचर (Photious Bibliotheca in Byzantine Literature) नामक अपने आलेख में फोशियस की संदर्भग्रंथ-सूची को मध्यकालीन बैसैटीन साहित्य का विशेष कार्य माना है।² अरबी भाषा में इस तरह के कार्य हो रहे थे। इबिन दुरैद (Ibn- Duraid), अल क्वारिस्मी (Al- Khwarizmi) आदि के निघंटु इसके उत्तम दृष्टांत हैं। यूरोप में इसाई धर्म का प्रचार-प्रसार हुआ, जिसके फलस्वरूप लैटिन भाषा का मुख्यधारा भाषा के रूप में विकास हो गया। आर्च बिशप इज़िडोर (Arch Bishop Isidore) ने शब्दोत्पत्ति शास्त्र का निर्माण किया। ग्यारहवीं सदी में पापियस (Papias) ने वोकाबुलेरियम लैटिनम् (Vocabularium Latinitum) नामक निघंटु का निर्माण किया। इन कार्यों में व्याकरण के विद्वान, भाषा वैज्ञानिक, वक्ता गण, साहित्यकार का महत्वपूर्ण स्थान था। पुनरुत्थान काल में पाश्चात्य निघंटु शास्त्रों की पुष्टि हुई, जिसके फलस्वरूप अनुवादक वर्ग इन कार्यों में भाग लेने लगे। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप अनेक कार्यों की शुरुआत हुई - (1) लैटिन, यूनानी भाषाओं का प्राचीन संस्कृति से संबंध बढ़ने लगा। (2) पुनरुत्थान के कारण हीब्रू, सिरियन आदि भाषाओं का अध्ययन होने लगा। (3) राष्ट्र भाषाओं का विकास हुआ, जिसके फलस्वरूप प्रथम भाषा व्याकरण ग्रन्थों का निर्माण हुआ। स्पानिश (1492), फ्लॉरन्टीन (1495), फ्रेंच (1527), जर्मन (1535) आदि भाषाओं के व्याकरण ग्रन्थ रचे गये। शास्त्रीय भाषाओं के निघंटुओं का निर्माण भी इसके परिणामस्वरूप होने लगा। ग्रीक भाषा में प्रसिद्ध प्रकाशक तथा अनुवादक हेनरी एस्टीन (Henry Estienne-1531-1598) का थिसरस लिंग्वा ग्रेक (Thesaurus Linguae Graecae) उपलब्ध है। उन्होंने अनाक्रयोन (Anacreon) का ओड्स (Odes-1554), फोसिलिड्स (Phocylids) का पेरप्रेस इट्स ऐंसाइमेंट्स द वीन विवरे (Perpres Et Enseignements De Vein Vivre) तथा प्रमुख दार्शनिक तथा डॉक्टर सेक्सटस ऐंपिरिकस (Sextus Empiricus) की कृतियों का अनुवाद किया। सन् 1531 में रोबर्ट-1 ने थिसरस लिंग्वा लैटिन (Thesaurus

Linguae Latinae) नामक थिसरस का निर्माण किया, जो लैटिन भाषा का श्रेष्ठ थिसरस माना जाता है।

बारहवीं सदी में प्राचीन भाषाओं के निघंटुओं की बिक्री होने लगी। डच अनुवादक जोरोडस वोशियास (Gerardus Vossius) ने राबी मनेस बिन इज़ाएल (Rabbi Maness Ben Israel) की कॉसिलीयेडर (Conciliador) नामक कृति का अनुवाद किया। उन्होंने ऐटिमोलजीम लिंग्वा लैटिन (Etymologium Linguae Latine) नामक कोश का निर्माण किया। स्पेन में सेबास्टीन द कोवराब्यस (Sebastian De Covarrubius- 1539-1613) ने Tesoro de la lengua Castellana, O Espanola नामक स्पानिश कोश का निर्माण किया। इंग्लैंड में कठिन शब्दों के कोशों की संख्या बढ़ गई। थॉमस ब्लॉटिन (Thomas Blount) का ग्लोसोग्राफिया (Glossographia) इसका उदाहरण है। इटली में भाषा-सुधार की अकादेमी देल्ला क्रुस्का (The Accademia Della Crusca) के नेतृत्व में सन् 1612 में प्रथम राष्ट्रीय कोश का निर्माण किया गया।

उन्नीसवीं सदी में विज्ञान एवं तकनीक का आरंभ हुआ। बृहत कोशों का निर्माण होने लगा। इंग्लैंड में इफ्रेन चेंबर्स (Ephraim Chambers) ने सैक्लॉपीडिक (Cyclopedic- 1728) का निर्माण किया। सुधार के साथ इसका अनुवाद फ्रेंस में ऐंसेक्लॉपीडिक नामक शीर्षक में प्रकाशित हुआ। डेनीस डिडरोट (Denis Diderot 1713-84) ने यह कार्य किया। डिडरोट जाने माने अनुवादक बने। अंग्रेज़ी से शाफ्सबेरी (Shaftesbury) का इंक्यूरी कंसर्निंग वेर्च्यू (Inquiry Concerning Virtue), ओरमेरिट (Ormerit) तथा जर्मन से एड्वेर्ड मूरे (Edward Moore) का द गांगस्टर (The Gangster) आदि रचनाओं का अनुवाद फ्रेंच भाषा में हुआ।

उन्नीसवीं सदी में कोशों की संख्या बढ़ गई। अठारहवीं सदी के अंत तक पाश्चात्य भाषाविदों ने एशिया भाषाओं पर ध्यान दिया, जिसके परिणामस्वरूप, पूर्वी भाषाध्ययन (Oriental Studies) पर ध्यान दिया जाने लगा। भाषाविज्ञान, तुलनात्मक व्याकरण आदि का अध्ययन होने लगा। प्रमुख भाषावैज्ञानिक अगस्त फिक (August

Fick) ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने सन् 1868 में इंदो यूरोपीय भाषाओं का तुलनात्मक कोश (Comparative Dictionary Of Indo European Language) का निर्माण किया। फ्रेंच भाषा में भी इस तरह के कार्य संपन्न होने लगे। होमर (Homer) की इलियड, हिपोकैटिस की संपूर्ण कृतियाँ, पिलनी की नैचुरल हिस्ट्री (Natural History) डैटे की इफर्नो (Iferno-1870) आदि रचनाओं का अनुवाद एमिली लिशर (Emmille Littre) ने किया, जिन्होंने अपना महान कोश 'डिक्शनरी द ला लैंग्वा फ्रेंकेस' (Dictionary of De La Langue Francaise) दस साल के कठिन परिश्रम के बाद प्रकाशित किया। बीसवीं सदी तक लगभग सभी मुख्यधारा भाषाओं के कोश तथा उसके नए संकलन भी प्रकाशित हुए।

बहुभाषा कोशों का आरंभ तथा विकास:

ई. पू. 2500 को नौसी से बाबिलोनियन तथा हरियन संस्कृति के निशान प्राप्त हुए, जिससे यह पता चला कि द्विभाषाकोश सुमेरियन संस्कृति के अभिन्न अंग थे।

पाश्चात्य देशों में लैटिन भाषा ज्ञान का भंडार रही। ज्ञान गिरजाघरों के अधीन में था। लैटिन भाषा की ज्ञान संस्कृति अन्य भाषाओं में अनूदित हो चुकी। मोरोविंगियन युग में द्विभाषा कोशों का सुवर्ण युग पुनरुत्थान काल था। हीब्रू, सिरियन, यूनान आदि भाषाओं का अध्ययन विपुल मात्रा में होने लगा। यातायात की सुविधाओं ने विदेशी भाषाध्ययन में सहायता दे दी। पुस्तिकाएँ तथा अन्यभाषा पुस्तकों की आवश्यकताएँ बढ़ गईं। लैटिन भाषा एक तरफ स्रोतभाषा थी तो दूसरी तरफ लक्ष्य भाषा। सन् 1510 में क्रिस्टीन वोडेर्सन ने उत्तर यूरोप में प्रथम लैटिन-डच कोश का निर्माण किया। क्रिस्टीन वोडेर्सन ने सैक्सो ग्रामाटिकस की पुस्तक जस्टाडो नरम् (1514), ईसाइयों के धार्मिक नियमों की पुस्तक (1529) आदि का अनुवाद किया। पुनरुत्थान काल में लैटिन भाषा की सहायता के बिना कोशों का निर्माण हुआ। सन् 1480 में सर विल्यम कास्टन ने फ्रेंच-अंग्रेज़ी कोश का निर्माण किया। इन्होंने

ओविड की Metamorphoses, जेकब डवोरेस की Legende dorec, Benoit De Saint- Mories Eneydos आदि रचनाओं का अनुवाद किया। जॉन फ्लॉरियो (1553-1625) ने बोकाशियो (Boccaccio) की द कॉमरोण (De Camerone), मोंटेग्ने (Montagne) की Essays (1603) आदि कृतियों की अंग्रेज़ी व्याख्या दी। जॉन फ्लॉरियो (1553- 1625) ने A World of words नामक इतालवी-अंग्रेज़ी बृहत्कोश का निर्माण किया।

सत्रहवीं सदी में राजनैतिक, व्यावसायिक तथा शैक्षिक परिस्थितियों के कारण विदेशी भाषाओं का अध्ययन ज़रूरी बन चुका। परिणामस्वरूप देशी भाषाओं में कोशों की संख्या बढ़ने लगी। ओटोमन साम्राज्य के वर्चस्व ने कोशों के निर्माण में सहायता दी। फ्रैंकोईस पेरिस द ल क्रोइक्स (Francois Peris de la Croix) ने तुर्की-फ्रांसीसी, फ्रांसीसी-तुर्की कोशों का निर्माण किया। अठारहवीं सदी को बृहत् कोशों का युग माना जाता है। जर्मन, अंग्रेज़ी, इतालवी, स्पानिश, डच आदि भाषाओं में कोशों का निर्माण हुआ। सन् 1786 में फ्रांसीसी-रूसी कोश का प्रकाशन हुआ। जिनसप्पे बेरेटी (1719-89) ने Dictionary of English and Italian (1760), Dictionary of Spanish and English (1776) आदि कोशों का निर्माण किया।

उन्नीसवीं सदी में संस्कृत भाषा का विकास हुआ। संस्कृत, असीरियन, फारसी आदि भाषाओं में कोशों का निर्माण हुआ। कालिदास के व्याख्याकार तथा ऋग्वेद के अनुवादक होरेस विल्सन का संस्कृत-अंग्रेज़ी कोश (1879), एमिली बेर्नट (Burnout-1821-1907) के Dictionnaire Classique Sanskrit Francais-1863-64, कुरान के अनुवादक एडवर्ड पाल्मर (1840 82) का Short English Persian Dictionary आदि कोशों का प्रकाशन हुआ। कोशकारों की श्रेणी में अनुवादकों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। कासिनर बार्बीस द मेयनार्ड (Cassiner Barbies de Meynard) नामक

(शेष पृ.सं. 50)

हिन्दी के कुछ चुने हुए उपन्यासों में चित्रित दलित जीवन

◆ डॉ. अञ्जलि.एन



सारांश: साहित्य और समाज का घनिष्ठ संबंध है। हिन्दी में प्रेमचन्द की उपस्थिति से उपन्यास समाज के यथार्थ से जुड़कर अपनी अलग पहचान बनाने लगा। प्रेमचन्द ने किसानों,

मज़दूरों, स्त्रियों और दलितों के पक्ष में आवाज़ बुलन्द की। इसके परिणामस्वरूप समकालीन उपन्यासों में भी ये मुद्दे खुलकर सामने आये। हिन्दी दलित उपन्यास का मुख्य सरोकार अपनी संस्कृति, परंपरा और इतिहास में अपनी पहचान तथा अपनी अस्मिता की खोज करना जो समानता, बंधुता व स्वतंत्रता जैसे जनतांत्रिक मूल्यों पर आधारित है। हिन्दी दलित उपन्यास पूरे दलित समाज की न केवल पड़ताल करता है बल्कि उसमें छुपी हुई विसंगतियों को उजागर कर उसके प्रतिकार और परिष्कार का प्रयत्न भी करते हैं।

बीज शब्द : वर्णव्यवस्था, दलित, दलित साहित्य, दलित उपन्यास, शोषण, विद्रोह।

भारत एक ऐसा विशाल देश है, जहाँ विभिन्न धर्मावलंबी लोग रहते हैं। यद्यपि सदियों से यहाँ हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन, पारसी, सिख जैसे कई धर्मों के लोग रहते हैं, तो भी पूरे देश में हिन्दुओं की संख्या सबसे अधिक है। बहुत प्राचीन काल से हिन्दुओं में जटिल वर्णव्यवस्था प्रचलित थी। वैदिक कालीन वर्णव्यवस्था ने हिन्दू समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों में विभाजित किया था। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य जातियों को समाज में ऊँचा स्थान दिया गया। शूद्रों को इन तीन जातियों की सेवा करनेवाला सेवक माना गया। धीरे-धीरे शूद्रों में विविध जातियों-उपजातियों की सृष्टि हुई और इन जातियों-उपजातियों के लोगों को दलित माना गया। वर्णव्यवस्था के आधार पर निम्न जाति के होने के कारण दलितों को अनेक यातनाएँ झेलनी पड़ीं। उस समय दलितों को आज़ादी

नहीं थी। उन्हें गुलामी में जीवन बिताना पड़ता था। सवर्ण समाज के लोगों के शोषण के फलस्वरूप इन्हें खुली हवा में सांस लेना भी मुश्किल था।

दलितों की दयनीय स्थिति में परिवर्तन लाने हेतु साहित्य में दलित विमर्श की शुरुआत हुई। दलित विमर्श जाति आधारित अस्मितामूलक विमर्श है। इसके केन्द्र में दलित जाति के अन्तर्गत शामिल मनुष्यों के अनुभवों, कष्टों और संघर्षों को स्वर देने की कोशिश की गयी है। दलित लेखक अपने अधिकारों की माँग के लिए लगातार संघर्षरत दिखाई पड़ते हैं। इन लेखकों ने अपने वर्ग में चेतना और प्रतिरोध का प्रकाश फैलाया है। डॉ. दयानन्द बटोही ने दलित साहित्य पर अपना विचार प्रकट करते हुए कहा है-“दलित साहित्य दलितों की चेतना को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इसमें दलित मानवता का स्वर है। एक नकार है। एक विद्रोह है। यह विद्रोह उस व्यवस्था के प्रति है जो सदियों से दलितों का शोषण कर लाभ की स्थिति में है।”¹ दलित साहित्य सचमुच दलितों की आत्मपहचान एवं विद्रोह का साहित्य है। यह एक प्रतिबद्ध साहित्य है जो मनोरंजन या स्वान्त सुखाय नहीं लिखा जाकर अपने समाज को जागरूक करने, चेतना का संचार कर उसे परिवर्तित करने तथा दलितों और गैरदलितों की मानसिकता बदलाने के उद्देश्य और लक्ष्य को सामने रखकर लिखा जाता है। दलित रचनाओं का उपयोग उपेक्षितों में परिवर्तन लाने के लिए साहित्य को एक शस्त्र मानकर किया गया। इस संदर्भ में प्रसिद्ध दलित लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकी के शब्द उल्लेखनीय हैं-“दलित साहित्य समाज में समानता, भाईचारा और मानवीय स्वतंत्रता की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध है।”² हिन्दी साहित्य पर विचार करने से पता चलता है कि हिन्दी में दलित साहित्य का प्रारंभ सन् 1914 में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित ‘अछूत की शिकायत’ नामक कविता से माना जाता है। इसके

रचयिता हीरा डोम को पहला दलित कवि स्वीकार किया गया है। इसके बाद कहानी, उपन्यास से लेकर साहित्य की लगभग हर विधाओं में दलित रचनाकारों ने अपना योगदान दिया है।

हिन्दी दलित उपन्यास दलित जीवन का वास्तविक दस्तावेज़ है। इन उपन्यासों के लेखक स्वयं दलित वर्ग के होंगे और अपने जीवन में जो कुछ उन्होंने भोगा, अनुभव किया, उसीका यथार्थ चित्रण अपनी रचनाओं में किया। इन उपन्यासों की विशेषता यह है कि इनमें चित्रित दलित पात्र प्रतिकूलताओं से संघर्ष करके सफलता तक पहुँचते हैं। अर्थात् उपन्यासों में समस्याओं के चित्रण के साथ-साथ इन्हीं समस्याओं का समाधान भी चित्रित है। छुआछूत, धार्मिक असमानता, दलित नारी शोषण, दलित शिक्षा आदि दलित उपन्यासों के मुख्य विषय हैं। हिन्दी के प्रमुख दलित उपन्यासों की कोटि में जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर', प्रेम कपाडिया का 'मिट्टी की सौगन्ध', सत्यप्रकाश का 'जसतस भई सवेर', मोहनदास नैमिशराय का 'मुक्तिपर्व', कौसल्या बैसंत्री का 'दोहरा अभिशाप' आदि उल्लेखनीय हैं।

दलित जीवन की विसंगतियों का यथार्थ चित्रण करनेवाला उपन्यास है 'छप्पर'। जयप्रकाश कर्दम के इस उपन्यास में समाज में व्याप्त दलित शोषण की गाथा प्रस्तुत की गयी है। इस उपन्यास के मुख्य पात्र का नाम चन्दन है, जो पढ़ाई के लिए गाँव से शहर जाता है। शहर पहुँचकर चन्दन महसूस करता है कि दलितों के लिए गाँव और शहर दोनों बराबर हैं। शहर में जाकर चन्दन अपने वर्ग पर होनेवाले धार्मिक शोषण पहचानता है और दलित वर्ग को इस शोषण से अवगत कराता है। वे अपने वर्ग के छात्रों को तथा मिलों-कारखानों में काम करनेवाले मज़दूरों को मिलाकर शिक्षा के महत्व पर बातें करता है और पढ़ लिखकर अपने वर्ग को सुधारने में भरपूर सहयोग देने की आशा करता है। उपन्यसकार ने अपना उद्देश्य चन्दन के इन्हीं शब्दों में प्रकट किया है "हमारी उन्नति के साथ हमारे वर्ग की उन्नति भी अनिवार्य है। तब ही हमारी शिक्षा सफल हो उठती है,

हमें अपने साथ-साथ अपने समाज के उत्थान और विकास की ओर भी ध्यान देना चाहिए।"³ उपन्यास में यह भी चित्रित है कि ठाकुर हरनामसिंह की बेटी जो चन्दन के साथ पढ़ती थी, चन्दन की बातों से प्रभावित होकर अपने पिताजी को समझा देती है कि मानव मानव के बीच ऊँच-नीच की दृष्टि ठीक नहीं। अपनी बेटी से सहमति करके ठाकुर अपनी सारी ज़मीन भूमिहीनों को बाँट देता है। इस प्रवृत्ति का चित्रण करके उपन्यसकार ने यही सिद्ध करना चाहा है कि दलितों के उद्धार के लिए सवर्णों की मानसिकता में परिवर्तन आवश्यक है।

सत्यप्रकाश के उपन्यास 'जसतस भई सवेर' में अन्धविश्वास, शोषण, छुआछूत, अंतर्जातीय विवाह और अशिक्षा की समस्याएँ चित्रित की गयी हैं। इसमें दलितों की जीवन-शैली और उनके जीवन के यथार्थ का मार्मिक चित्रण हुआ है। इस उपन्यास के नायक के रूप में सरवन नामक पढ़ा-लिखा दलित युवक का चित्रण हुआ है जो दलितों के जीवन की प्रतिकूलताओं से भलीभाँति परिचित है। वह एक सरकारी नौकर है। वह दलित वर्ग की नामसज़ी और अज्ञता से लाभ उठानेवाली सवर्ण मानसिकता का सख्त विरोध करता है। वह अपने बड़े भाई के अन्धविश्वासों को लेकर काफी चिन्तित है और बार-बार भाई को चेतावनी देता है कि पोंगापंडित की बातों पर विश्वास मत करो क्योंकि धर्म के नाम पर वह धोखेबाजी ही करता है। दलितों को सवर्ण जाति के लोग अपने जाल में फँसाकर अन्धविश्वासों में आस्था दिलाकर किसप्रकार उनका शोषण करते हैं, इसका यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। उपन्यास में चित्रित एक प्रसंग उदाहरण के लिए प्रस्तुत है- "कुछ दिनों से हंसा की एक भैंस बीमार हो गई। देवकृपा के कारण डॉक्टरों का इलाज कराना उचित न समझा। झाड़-फूँक काफी कराई, पर झाड़-फूँक से लाभ कुछ न होता था और न हुआ। आखिरकार भैंस ने दम तोड़ दिया।"⁴ इस संदर्भ में दलितों के विद्रोही स्वर भी उपन्यास में सुनाई पड़ती है। सरवन कहता है-"अरे हंसा मूर्ख मत बनो, दिमाग से काम लो, पूजापाठ में कुछ नहीं

रखा।⁵⁵ सरवन के समान उनका जेष्ठपुत्र शिवदास का चित्रण भी प्रगतिशील मानसिकतावाले पात्र के रूप में किया है। शिवदास के माध्यम से उपन्यासकार ने आरक्षण की अनिवार्यता, क्रिमिलियर के पीछे का षड्यंत्र, वर्तमान पत्रकारिता के क्षेत्र में व्याप्त अनैतिकता आदि के बारे में दलित वर्ग को अवगत कराने का प्रयास किया है।

मोहनदास नैमिशराय के उपन्यास 'मुक्तिपर्व' का माहौल भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति का समय है। स्वतंत्रता-प्राप्ति से दलितों में भी एक नये प्रकार की ऊर्जा की लहर फैल गयी। दलितों को लगा कि वे भी स्वतन्त्र हैं। ऐसा सोचनेवाले दलित वर्ग के एक प्रतिनिधि पात्र का चित्रण इस उपन्यास में किया गया है जिसका नाम है बंसी। बंसी अपने मालिक से कहता है- "मुझे गुलाम बने रहने की आदत नहीं है नवाब साब, वैसे भी देश अब आज़ाद हो गया है। अब न कोई किसीका गुलाम है और न कोई किसीका मालिक। सब बार-बार है।"⁵⁶ दलित विद्रोही मानसिकता का चित्रण भी इस उपन्यास में है। उपन्यास में दिखाया गया है कि बंसी और सुंदरी ने अपने बच्चे का नाम रखा सुनीत। यह पौराहित्य के प्रति किया जानेवाला पहला विद्रोह था क्योंकि अभी तक किसी भी दलित को इसप्रकार का नाम नहीं दिया गया था। अभी तक दलितों के लिए कुछ निश्चित नाम थे। पंडित इन निश्चित नामों से कुछ नाम बच्चे को देकर दक्षिणा लेकर चला जाता था। लेकिन जब बंसी के बच्चे को नाम देने के लिए पंडित आता है तो दलित लोग उस पर व्यंग्य करके खाली हाथ लौटाता है और बच्चे के लिए सुनीत जैसा नया नाम रखता भी है। दलितों पर होनेवाले अत्याचारों के प्रति आवाज़ उठानेवाले विद्रोही व्यक्तित्व के रूप में उपन्यास में बंसी को चित्रित किया है। मंदिरों-मसजिदों में प्रवेश के लिए, पानी जैसी आवश्यक चीज़ों के लिए वह संघर्ष करता है। वह प्रश्न करता है "हम किनकी पूजा करें? न मंदिरों में प्रवेश है, न मसजिदों में। क्या हम इन्सान नहीं है?"⁵⁷

'मुक्तिपर्व' में चित्रित एक अन्य पात्र है रामलाल जो आर्यसमाजी है, वह भी दलितों के उद्धार में विशेष ध्यान

रखनेवाला है। सवर्ण जाति के होने पर भी वह प्रगतिशील मानसिकता रखनेवाला है और दलितों की प्रगति के लिए बहुत प्रयत्न करता है। वह दलित वर्ग के लोगों से अपने बच्चों को शिक्षा देने का आह्वान देता है। रामलाल के चित्रण के माध्यम से उपन्यासकार का उद्देश्य है कि दलितों की उन्नति के लिए पहले सवर्णों की मानसिकता में बदलाव लाना है। सवर्ण लोगों की मानसिकता बदलने पर दलितों की स्थिति बहतर हो जायेगी।

ओमप्रकाश वाल्मीकी के 'जूठन' में दलितों की पीड़ा एवं विद्रोह दोनों चित्रित हैं। पानी जैसी मूलभूत ज़रूरतों से भी वंचित दलित जाति की जीवन गाथा यहाँ अनावृत हो उठी है। सामाजिक स्तर पर दलितों को इन्सान का दर्जा नहीं मिलता था। स्कूल में दलित बच्चों को सवर्ण बच्चों और अध्यापकों का उत्पीड़न सहना पड़ता था। प्रशासनिक दृष्टि से भी दलित असुरक्षित है। हर कहीं दलितों को अमानवीय वृत्तियों का सामना करना पड़ता है। दलित रचना का मकसद है कि अपने भोगे हुए यथार्थ को उसकी तीव्रता के साथ जनता के सामने प्रस्तुत करना। इस दृष्टि से 'जूठन' में ओमप्रकाश वाल्मीकी अपने जीवन को ही पुनः जी रहे हैं।

दलित नारियों पर होनेवाले शोषणों का चित्रण दलित उपन्यासों का एक प्रमुख विषय है। यह सचमुच दलितों का अभिशाप है कि शेष हर क्षेत्र में अछूत होने पर भी ज़मीन्दार लोग दलित स्त्रियों की इज़्जत लूटते हैं। लगता है कि इसमें छुआछूत की समस्या नहीं है। प्रेम कपाड़िया के उपन्यास 'मिट्टी की सौगन्ध' में ज़मीन्दार ठाकुर मदनसिंह दलित नारियों का शोषण करता है। दैहिक शोषण होने पर भी ये दलित लड़कियाँ कुछ प्रतिक्रिया नहीं कर सकती थीं, क्योंकि पुलिस भी इन ज़मीन्दारों के पक्षधर थी। सवर्णों की इस मानसिकता पर बदलाव लाने की आवश्यकता पर जोर देते हुए इस उपन्यास में दिखाया गया है कि दलित युवती शीला से वीजेन्द्र शादी कर लेता है जिसकी इज़्जत खुद वीजेन्द्र के पिता ठाकुर मदनसिंह ने लूट ली थी।

जयप्रकाश कर्दम के उपन्यास 'छप्पर' में भी दलित नारी शोषण का चित्रण हुआ है। इस उपन्यास में चित्रित एक पात्र कमला जो एक अछूत लड़की है, उसके एक बच्चा है। लेकिन स्वयं कमला भी जानती नहीं कि उस बच्चे का पिता कौन है, क्योंकि कमला एक सामूहिक बलात्कार की शिकार है। उस बलात्कार का परिणाम है वह बच्चा। कमला को उसके मालिक तथा मित्रों ने मिलकर बलात्कार किया था। कमला के पिता हरिया इस अत्याचार के बारे में पूछने के लिए मालिक के घर जाता है तो मालिक उनके हाथ में दो सौ रुपए देते हुए कहता है-“यह लो और घर जाओ, जो हो गया उसे भूल जाओ।”⁸ हरिया ने प्रतिवाद किया तो उसे पिटाया गया। दलित नारी की दयनीय स्थिति का चित्रण करनेवाला एक अन्य उपन्यास है 'जस तस भई सवेरे।' गाँव का ज़मीन्दार चौधरी देवीपाल स्त्रियों के प्रति दुर्बलता रखनेवाला है। चौधरी इतना लम्पट है कि गाँव की लगभग सभी स्त्रियों उनकी भोग वस्तु बन चुकी है। वह दलित वर्ग की लगभग सभी लड़कियों का शोषण करता है।

दलित उपन्यासों में चित्रित नारी शोषण से यह मालूम होता है कि दलित होना अभिशाप है, पर दलित नारी होना उससे भी अधिक अभिशाप है। दलित स्त्री संघर्ष और स्त्री अस्मिता की पहचान का दस्तावेज़ है कौसल्या बैसंत्री का उपन्यास 'दोहरा अभिशाप'। यह एक आत्मकथात्मक उपन्यास है, जिसमें स्वयं कौसल्या बैसंत्री, उसकी माँ भागीरथी बाई, कौसल्या के पति आदि की कहानी बतायी गयी है। भागीरथी बाई एक सशक्त महिला है, जो अनेक प्रतिकूलताओं से लड़कर अपने बच्चों को सामाजिक हैसियत और स्वाभिमान के साथ जीने का और अच्छा जीवन-स्तर प्राप्त करने का अवसर प्रदान करती है। शिक्षा के ज़रिए कौसल्याजी हिन्दू सवर्ण-व्यवस्था के अन्यायों एवं अत्याचारों से अवगत हो जाती है। अनेक दलित उपन्यासों में उपन्यासकारों ने कई विद्रोही पात्रों को समाज के सामने प्रस्तुत किया है, ताकि दलित समाज में जागरण आये और दलित वर्ग ने अपने ऊपर होनेवाले शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठायी।

दलित साहित्य की मूल चेतना सचमुच दलितों पर होनेवाले शोषण की पहचान ही है। दलितों ने पहचान ली है कि वे दैहिक, आर्थिक तथा प्रशासनिक सभी स्तरों पर शोषित हो रहे हैं। समकालीन हिन्दी दलित उपन्यास दरअसल दलितों के शोषण के बहुआयामी यथार्थों को पेश करनेवाले हैं। दलित उपन्यासों में प्रगतिशील विचारों का सक्रिय सान्निध्य है। दलित उपन्यासों में दलितों का ही भोगा हुआ यथार्थ चित्रित है, इसीलिए वह सचमुच दलित जीवन का दस्तावेज़ ही है। इसीलिए वसन्त पाटणकर ने कहा है “दलित व्यक्ति द्वारा निर्मित, दलितों के जीवन पर दलित संवेदनशील अनुभूति का चित्रण करनेवाला साहित्य ही दलित साहित्य है। इसप्रकार के लेखों में समूह भावना का एहसास व्यक्त होगा तथा प्रकट-अप्रकट रूप से, प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से विद्रोह तथा रूढ़ीगत समाज-रचना के प्रति नकारात्मक भावना व्यक्त होगी।”⁹

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. गाँधी दर्शन की प्रासंगिकता, डॉ पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, पृष्ठ संख्या 23
2. दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ; ओमप्रकाश वाल्मीकी, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2013, पृ.सं 8
3. छप्पर, जयप्रकाश कर्दम पृ.सं 38; संगीत प्रकाशन, नई दिल्ली; 1996
4. जस तस भई सवेरे, सत्यप्रकाश पृ.सं 17; कामना प्रकाशन, दिल्ली; 1998
5. वही, पृ.सं 10
6. मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृ.सं 34; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; 2011
7. वही, पृ.सं 49
8. छप्पर, जयप्रकाश कर्दम, पृ.सं 72
9. 'समकालीन हिन्दी उपन्यास डॉ. एन मोहन, पृ.सं 104; वाणी प्रकाशन, 2015.

◆ सहायक आचार्या
हिन्दी विभाग
एन.एस.एस. कॉलेज, चर्त्तला



पत्रकारिता के विकास के संदर्भ में हिंदी गद्य का बदलाव

◆ डॉ.सुजित एन तंपी

आलेख का सार

हिंदी गद्य का विकास उन्नीसवीं शती में पत्रकारिता के विकास के साथ माना जा सकता है। दरअसल गद्य आम आदमी की भाषा है। संप्रेषणीयता है उसका मुख्य उद्देश्य। इसलिए व्याकरण के पीछे गद्य को नहीं; गद्य के पीछे व्याकरण को दौड़ना पड़ता है। लोकतंत्र का चौथा स्तंभ पत्रकारिता की भाषा समय की माँग के अनुरूप बदलती रहती है। उस बदलाव का प्रभाव गद्य में पड़ना स्वाभाविक भी है।

बीजशब्द: पत्रकारिता, बदलाव, संप्रेषणीयता, लोकतंत्र, जीवंतता।

प्रस्तावना : अनुभूति और चिंतन के योग से भाषा की उत्पत्ति हुई है। पद्य और गद्य भाषा की दो शैलियाँ हैं। गद्य का विकास पद्य के बाद आधुनिक काल में समय की माँग के अनुसार आम आदमी की आवाज़ के रूप में हुआ है। अतः हिंदी गद्य का क्रमबद्ध विकास उन्नीसवीं शती से माना जा सकता है। इसके मूल में भारतीय सामंती सत्ता का हास, अंग्रेज़ी सत्ता का विकास, आर्थिक परिवर्तन, आधुनिक विज्ञान का प्रभाव, नव जागरण का प्रभाव, चिंतन के केंद्र में ईश्वर के स्थान पर आदमी की प्रतिष्ठा आदि अनेक सामाजिक बदलावों की बातें निहित हैं। भारत की आम जनता की बोली हिंदी गद्य और लोकतंत्र का चौथा स्तंभ पत्रकारिता का रिश्ता बहुत गहरा है। समय एवं परिस्थिति के प्रभाव एवं दबाव के कारण हिंदी गद्य में परिवर्तन लगातार होता ही रहता है। अतः हिंदी जीवित भाषा है; बहता नीर है।

पत्रकारिता: आज के वैज्ञानिक युग की अद्भुत एवं विशिष्ट उपलब्धि है पत्रकारिता। नवीनतम धटनाओं की जानकारी एवं विचारों को सावधानी से चुनकर उनका मूल्यांकन करके किसी भी तरह के समाचार माध्यम, जैसे- मुद्रित, श्रव्य, दृश्य की सहायता से जन-जन तक पहुँचाने की प्रक्रिया को पत्रकारिता कह सकता है। पत्र-पत्रिकाएँ समाज की गतिविधियों के दर्पण हैं। वे समाज

की विसंगतियों को निर्भयतापूर्वक सामने लाती हैं। पत्रकारिता का लक्ष्य एक आदर्श समाज की स्थापना करना होता है, जिसमें हर दृष्टि से लोग सहज, स्वस्थ एवं संपन्न जीवन-यापन कर सकें।

पत्रकारिता का जन्म कागज़ निर्माण और मुद्रण कला के जन्म के उपरान्त हुआ। 19, 20 और 21वीं सदियों में पत्रकारिता की विशेष उन्नति हुई। हिंदी भाषा में 'पत्रकारिता' शब्द 'पत्र' से उत्पन्न हुआ है। प्राचीन भारत में भोज पत्रों पर लिखा जाता था, इसलिए लिखित सामग्री को पत्र कहा गया तथा पत्र पर समाचार आदि लिखनेवाले पत्रकार कहलाए। लेकिन पत्रकारिता अंग्रेज़ी के Journalism का अनुवाद है। यह शब्द Journalism से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ दैनिक होता है। पत्रकारिता को 17-18 वीं शताब्दी से पूर्व Periodical नाम से जाना जाता था जिसका अर्थ होता है नियतकालीन। कालान्तर में इसका स्थान लैटिन शब्द 'डियूरनल' और 'जर्नल' ने ले लिया। इसमें नित्य का विवरण होता है। फ्रेंच भाषा का एक शब्द है 'जर्न'; इससे भी जर्नलिज़्म शब्द की उत्पत्ति मानी जाती है। जर्न का अर्थ होता है दैनिक गतिविधियों अथवा घटनाओं की विवरणात्मक प्रस्तुति। आज जर्नल शब्द व्यापक हो गया है। पत्रकारिता लोकतंत्र का अनिवार्य अंग है। यह सत्ता की पूजा करना न सीखकर जनता की सेवा का पाठ पढ़ाती है।

हिंदी पत्रकारिता का उद्भव और विकास

जेम्स ऑगस्टस हिककी ने 29 जनवरी 1780 को बंगाल से 'बंगाल गज़ट' निकाला था, जिसे भारत का पहला समाचार पत्र कहा जा सकता है। प्राप्त सामग्री के आधार पर हिंदी का पहला पत्र 'उदंतमार्तण्ड' (30 मई 1826 ई.) था। भारतेंदु (1866-1900) ने हिंदी के प्रत्येक अभाव को दूर करने की चेष्टा की। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती (1903-1920) पत्रिका के माध्यम से हिंदी लेखन की वर्तनी

शुद्ध की और भाषा को व्याकरणसम्मत बनाया ।

1900 से 1947 के कालखंड में पत्रकारिता का विकास और अधिक हुआ। साहित्य की नई प्रवृत्तियाँ, उसमें होनेवाले प्रयोग और नूतन दृष्टिकोण सबसे पहले पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही सामने आए। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी पत्रकारिता स्वराज और सुराज के मार्ग से विचलित हो जाती है। अतः पत्रकारिता मिशन नहीं व्यवहार बन जाती है। अस्सी के दशक में दूरदर्शन का भी प्रचार-प्रसार हुआ।

आज के कंप्यूटर युग में नए सूचना तंत्र यानी मीडिया ने मनुष्य की सार्वभौमिक सत्ता अर्थात् उसकी विचार पद्धति पर भी हमला शुरू कर दिया। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया आजकल प्रिंट मीडिया पर हावी हो रहा है।

पत्रकारिता और भाषा का संबन्ध: पत्रकारिता मात्र सूचना देने का ही कार्य नहीं करती, बल्कि यह भाषा और समाज का परिवर्तन भी करती है। जिस तरह समाज में, उसकी परिस्थितियों में, परिवर्तन होता है उसी तरह भाषा में भी परिवर्तन स्वाभाविक है। प्रत्येक कालखंड की अपनी समस्याएँ होती हैं, चुनौतियाँ होती हैं जिनका यथासंभव निदान आवश्यक है। यही बात भाषा पर भी लागू होती है। पत्रकारिता ने हिंदी भाषा को विकसित एवं परिष्कृत किया है। पत्रकारिता के माध्यम से हिंदी शब्द भण्डार में आशातीत वृद्धि हुई है और आज वह साहित्य के साथ इतर ज्ञान, विज्ञान, इतिहास, विधि, दर्शन आदि की सशक्त संदेशवाहक बन गयी है। पत्रिकाओं ने गद्य की विविध विधाओं के परिमार्जन तथा उन्नयन में जो बृहत् योगदान दिया है उसके फलस्वरूप साहित्य में भी नवीन प्रयोगों की पीठिका प्रस्तुत हुई है। आज के भूमंडलीकरण के युग में कोई भी भाषा विशुद्ध होकर अपने बलबूते पर चलने का दावा नहीं कर सकती है। यदि वह ऐसा करे तो इसका अर्थ होगा कि वह परोक्षतः कहीं अपनी जीवन्तता को ही आघात पहुँचा रही है !

पत्रकारिता और हिंदी गद्य में बदलाव : हिंदी भाषा की समृद्धि में पत्रकारिता के सहयोग का ऐतिहासिक महत्त्व है। पत्रकारिता की भाषा लचीली और सुबोधगम्य रखी जाती है, क्योंकि उसके पाठक अल्पशिक्षित व्यक्ति

से लेकर उच्चशिक्षा प्राप्त व्यक्ति तक होते हैं। अतः भाषा के व्याकरण पर अधिक ध्यान न दे कर उसकी संप्रेषणीयता पर ध्यान दिया जाता है। फलस्वरूप भाषा के प्रयोग में जाने-अनजाने कुछ गलतियाँ आ जाती हैं। ये गलतियाँ व्यापक रूप में प्रचलित होने के बाद वह प्रयोग सामान्य हो जाता है। बाद में उसे परिवर्तन के रूप में स्वीकार करना पड़ता है। कुछ उदाहरण देखिए-

1. वर्तनी के स्तर पर 'ई' के स्थान पर 'यी' का प्रयोग।
उदा: नई-नयी, हुई-हुयी

भाषाविज्ञान की मान्यता के आधार पर 'ई' (हमेशा स्वर) की सत्ता ही स्वीकार करना चाहिए। लेकिन पत्र-पत्रिकाओं में 'ई' के स्थान पर 'यी' का प्रयोग करता जाता है।

2. शब्द के स्तर पर
अकादमी, त्रासदी, गोदाम, अस्पताल (हिंदीकृत शब्द)
भ्रष्टाचार, जिलाधिकारी, रेलगाडी (संधि शब्द)
नागरिक, भावात्मक, प्रशिक्षण, विभागीय (उपसर्ग और प्रत्यय द्वारा निर्मित शब्द)

प्रस ट्रस्ट, निपटान, लाठीचार्ज, अधिवेशन, गोली कांड (विशेष शब्दावली)

माकपा (माक्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी), भाजपा (भारतीय जनता पार्टी), हडकंप (राजनीतिक हलचल) (नई शब्दावली)

3. व्याकरण के स्तर पर
लिंग - लिंग निर्णय हिंदी की अपनी विशेषता है। लिंग का असर पूरी वाक्य संरचना पर पड़ता है। अंग्रेज़ी जैसी दूसरी भाषाओं के प्रभाव के कारण इसमें परिवर्तन आ रहा है। जैसे- बाज़ार खुली थी

(बाज़ार पुल्लिंग है, 'खुला था' प्रयोग होना चाहिए था)
वचन - कई दिनों, कई वर्षों

कई लगाने के बाद दिनों, वर्षों का प्रयोग अशुद्ध है। लेकिन इस तरह का प्रयोग बढ़ता जा रहा है।

क्रिया - प्रश्न पूछना, युद्ध लड़ना - ये अंग्रेज़ी अनुवाद से आयी गलतियाँ हैं। पूछना, लड़ना ही पर्याप्त है।

क्रिया विशेषण - भीषण शोक, भारी भीड़, घनघोर मैत्री - ये प्रयोग अशुद्ध हैं, लेकिन प्रयोग में हैं ।

चिह्न के स्तर पर - 1.पूर्ण विराम के लिए हिंदी में खड़ीपाई (।) का प्रयोग होता है। आजकल खड़ीपाई के स्थान पर अंग्रेज़ी के चिह्न (.) का प्रयोग होता है। 2.अनुनासिक चिह्न (ँ) के स्थान पर चिह्न (.) का प्रयोग होता है। उदा: 'माँग' के बदले 'मांग' लिखता है ।

4. संरचना के स्तर पर

कर्ता, कर्म, क्रिया यह क्रम हिंदी वाक्य-विन्यास का मानक रूप है। जैसे-एक राजा था ।

एक था राजा, राजा था एक, था एक राजा- जैसे प्रयोग हिंदी वाक्य विन्यास के अनुरूप नहीं हैं। लेकिन इस तरह का प्रयोग सामान्य हो गया है ।

5. हिंदी स्वभाव के स्तर पर

मेरी निगाह मेरे मित्र पर थी। मैं हमारे घर जा रहा हूँ। (मेरे , हमारे की जगह अपने होना चाहिए) बाढ़ प्रभावित इलाका। (बाढ़ग्रस्त इलाका होना चाहिए)

हरेक भाषा का अपना विशेष स्वभाव होता है।लेकिन अन्य भाषा के प्रभाव से और अन्य भाषा के हिंदी लेखकों के लेखन में मातृभाषा के प्रभाव के कारण हिंदी भाषा के स्वभाव में भी परिवर्तन आ रहा है ।

निष्कर्ष : भाषा का भावी रूप क्या होगा ? इसकी कल्पना असमंजस्य से भर गयी है। मीडिया बहुत सारे पुराने को नष्ट कर रहा है, वह एक नये संसार की रचना

कर रहा है।अब प्रिंट मीडिया के आगे चमकीला,सत्ताशील, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया प्रवेश कर गया है।मीडिया ने मनोरंजन की नयी भाषा बनाने का काम किया है। अतः किसी भी जीवित भाषा के संदर्भ में यह नहीं कहा जा सकता है कि उसका यह रूप अंतिम है। वर्तमान युग की चुनौतियों को भाषाई दृष्टि से स्वीकार कर बदलती परिस्थितियों के अनुरूप निरंतर बदलते जाने की क्षमता जीवंत भाषा हिंदी की विशेषता है। जीवित भाषा के रूप में हिंदी भाषा को ऊर्जा देने में पत्रकारिता का योगदान कम महत्वपूर्ण नहीं है।

सहायक ग्रंथ:

- 1.मीडिया की भाषा, सं.डॉ.वसुधा गाडगिल,अध्ययन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रिब्यूटर्स,नई दिल्ली,प्र.सं.2007.
- 2.भाषाविज्ञान एवं हिंदी भाषा, डॉ.मुकेश अग्रवाल; स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली 110002. प्र.सं.2015
- 3.हिंदी पत्रकारिता और गद्यशैली का विकास, डॉ.गंगा नारायण त्रिपाठी,माधुरी प्रकाशन; इलाहबाद. प्र.सं.2007
- 4.हिंदी गद्य विन्यास और विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी; लोकभारती प्रकाशन,चतुर्थ संस्करण,प्र.सं.2008
- 5.जनसंचार बदलते परिप्रेक्ष्य में डॉ.बलवीर कुन्दरा,तक्षशिला प्रकाशन,नई दिल्ली, प्र.सं.2009.

♦ असोसियेट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
यूनिवर्सिटी कॉलेज, तिरुवनन्तपुरम, केरल।

सिद्ध गोष्ठी और हठयोग में मोक्ष की संकल्पना का अध्ययन



सारमोक्ष एक ऐसी अवस्था है, जिसको हिन्दू, बौद्ध, जैन तथा सिख आदि धर्मों में विभिन्न शब्दों के रूप में स्वीकार किया गया है।

सामान्यतः मोक्ष का अर्थ जीव का जन्म और मरण के बन्धन से मुक्त हो जाना है। सिद्ध गोष्ठी में गुरुजी ने मोक्ष शब्द के बदले मुक्ति शब्द का प्रयोग किया है। गुरुजी कहते हैं प्रभु मिलाप और मुक्ति की प्राप्ति का उपाय एक ही है। उन्होंने मोक्ष और

♦ सचिन भारद्वाज * ज्योति शर्मा

मिलाप का समान अर्थ में प्रयोग किया। वे प्रभु से मिलन को ही मुक्ति कहते हैं, हठयोग में मोक्ष के सन्दर्भ में कहा गया है कि जिस प्रकार से नमक जल में घुलता है, उसी प्रकार से आत्मा में मन का विलय होता है। इसी को समाधि कहा गया है। जीवात्मा का परमात्मा से मिलन होने पर साधक के सभी संकल्प नष्ट हो जाते हैं, इसी अवस्था को समाधि कहते हैं। हठयोग भी मोक्ष के लिये पर्यायवाची शब्द समाधि का प्रयोग करता है। हठयोग में स्वात्माराम योगी कहते हैं कि विशेष प्रकार

के वस्त्र धारण करने से या विशेष शास्त्रों की चर्चा करने से नहीं, केवल अभ्यास के माध्यम से ही चित्त उस निरालंब में लीन होता है।

बीज शब्द: मोक्ष, हठयोग, सिद्धगोष्ठी।

प्रस्तावना : भारत भूमि पर समयानुसार अनेक संतों व महापुरुषों ने जन्म लिया है, उन्होंने विश्व की सम्पूर्ण मानवजाति को आध्यात्मिक संदेश दिया है जिससे हमारे देश की धरती गौरवान्वित और महिमावान हो उठी है। इनमें गुरुनानक देव का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। गुरु नानक देव जी सिख धर्म के संस्थापक और सिखों के पहले गुरु थे। उनका जन्म 15 अप्रैल 1469 में पंजाब के तलवंडी नामक गाँव में हुआ था। बचपन से ही गुरु नानक देव जी विशेष शक्तियों के धनी थे। उनकी माँ धार्मिक विचारों की थीं और वे अपनी माँ से बहुत प्रभावित और प्रेरित थे। माँ ने गुरु नानक देव जी को अच्छे धार्मिक संस्कार दिए थे। वे एक महान विद्वान थे, फिर भी उन्होंने चारों दिशाओं में यात्रा करते हुए लोगों के बीच अपना संदेश फैलाने के लिए स्थानीय भाषाओं का इस्तेमाल किया। गुरु नानक जी तत्कालीन परिवेश में व्याप्त अज्ञानता को दूर करना चाहते थे। गुरु नानक जी को साधु-संतों की संगति में रहना पसंद था। वे भजन-कीर्तन भी किया करते थे। मात्र पांच वर्ष की उम्र से ही उन्होंने अपने आध्यात्मिक ज्ञान से सबको मंत्रमुग्ध कर दिया था। उनको हमेशा लगता था कि ऊपरवाला उन्हें मनुष्य का भला करने के लिए कह रहा है। ईश्वर के संकेत की वजह से उन्होंने भक्ति मार्ग का चयन किया। गुरुनानक देव जी के विचारों और उपदेशों को सुनकर सब उनसे प्रभावित हो जाते थे। गुरुजी लोगों को ईश्वर पर विश्वास करने के लिए कहते थे। वे बेहद साधारण जीवन जीते थे। गुरुजी ने आजीवन लोगों को अपने ज्ञान और विचारों से प्रेरित किया। उन्होंने हमेशा लोगों को सही राह दिखाई। वे बेहद सहज, सरल और सीधी भाषा बोलते थे, इसलिए लोग उनके उपदेशों को सरलता से समझते थे और उनके विचारों का अनुकरण भी करते थे। उनके मन में सभी लोगों के लिए दयाभाव था। वे परोपकारी इंसान थे, साथ ही गरीबों और

जरूरतमंदों की मदद भी करते थे। वे सभी मनुष्यों को एक समान समझते थे। उन्होंने अन्याय के खिलाफ विरोध भी किया और ऐसे समय में मानवता का संदेश फैलाया। जब हर कोई धर्म के विकृत रूप के प्रसार पर ध्यान केंद्रित कर रहा था, उन्होंने महिलाओं के अधिकारों और समानता के बारे में भी बात की। गुरुनानक देव जी ने अपनी पूरी ज़िदगी समाज-सुधार में लगा दी। वे समाज में हो रहे भेद भाव से दुखी थे, इसलिये लोगों के पथ प्रदर्शक बनकर इसे मिटाना चाहते थे। वे सभी को ईश्वर का बालक समझते थे। उनका प्रमुख लक्ष्य था, दूसरों की सच्चे मन से सेवा करना और इसीमें वे खुश रहते थे। सिख धर्म के गुरुओं में सबसे पहले गुरुनानक देव जी हैं। गुरुनानक देव जी ने जीवन के पच्चीस साल ईश्वर की भक्ति में गुज़ार दिये थे। इसी दौरान उन्होंने काफी यात्रा की और अपने धार्मिक उपदेशों का प्रचार-प्रसार भी किया- नाम के बिना, मन का कोई पक्का सहारा नहीं है, यह संसारिक तृष्णा कभी नहीं मिटती आदि। अंतिम समय में पंजाब में स्थित करतारपुर नामक गाँव में गुरुजी रहने लगे। कुछ समय बाद उन्होंने यहीं 22 सितंबर 1539 को अपना शरीर त्याग दिया।

सिद्ध गोष्ठी एक धार्मिक चर्चा है जो गुरुनानक देव जी महाराज, 84 सिद्ध व 9 नाथों के बीच सुमेरुपर्वत (हिमालय क्षेत्र) पर हुई थी। सिद्ध गोष्ठी का वर्णन हमें पुरातन जन्म साखी माईवाले की पुस्तक में भी मिलता है। सिद्ध गोष्ठी के अन्तर्गत गुरु नानक और सिद्धों के बीच हुए प्रसिद्ध शास्त्रार्थ में माया, बंधन और मोक्ष जैसे गूढ़ विषयों की चर्चा की गई है, जो श्री गुरुग्रन्थ साहिब की पृष्ठ संख्या 137 से 146 तक लिपिबद्ध रूप में प्राप्त होती है। इसके अन्तर्गत रामकली राग में कुल 73 छंद हैं। इस चर्चा में भाग लेनेवाले प्रमुख सिद्धनाथ थे चर्पतनाथ, मंगरनाथ और लोहारिया। मान्यता यह भी है कि यह गोष्ठी अचल बटला में हुई थी, इस गोष्ठी में चर्चा के अन्तर्गत गुरुमत तथा योग में अन्तर को स्पष्ट किया गया है। सिद्ध गोष्ठी को अन्य नामों से भी जाना जाता है, सिद्ध गोष्ठ, सिद्ध गोष्ठी या सिद्ध गोस्ट भी

कहते हैं। सिद्धों के साथ हुई चर्चा के दौरान, गुरुनानक बताते हैं कि मोक्ष प्राप्त करने के लिए त्याग और तपस्या आवश्यक नहीं है। सिद्ध गोष्ठी गुरुनानक और सिद्धों के बीच हुए प्रसिद्ध शास्त्रार्थ में गुरुनानक द्वारा जनकल्याण हेतु उच्चारित की गई अमृतमयी वाणी है। यह एक विशुद्ध शास्त्रार्थ है, जिसमें योग एवं हठयोग को सुन्दर, अर्थपूर्ण और संक्षिप्त भाषा में काव्यात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। इसकी वाणी में धर्म के सच्चे शाश्वत मूल्यों को प्रस्तुत किया गया है। इस गोष्ठी में गुरुमत तथा योग में अन्तर स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है।

सिद्ध गोष्ठी में मोक्ष की संकल्पना :- मोक्ष एक ऐसी अवस्था है, जिसको हिन्दू, बौद्ध, जैन तथा सिख आदि धर्मों में विभिन्न शब्दों के रूप में स्वीकार किया गया है। सामान्यतः मोक्ष का अर्थ जीव का जन्म और मरण के बन्धन से मुक्त हो जाना है। सिद्ध गोष्ठी में गुरुजी ने मोक्ष शब्द के बदले मुक्ति शब्द का प्रयोग किया है। गुरुजी कहते हैं -प्रभु मिलाप और मुक्ति की प्राप्ति का उपाय एक ही है। उन्होंने मोक्ष और मिलाप का समान अर्थों में प्रयोग किया। वे प्रभु से मिलन को ही मुक्ति कहते हैं, जिसके लिए उन्होंने दो साधन-सत्य और शब्द (प्रभु)-को ही मुक्ति के साधन के रूप में स्वीकार किया है। सिद्ध गोष्ठी में हमें देखने को मिलता है कि योगियों का उद्देश्य भी मुक्ति को प्राप्त करना है और गुरुनानकदेव जी की विचारधारा भी मुक्ति की प्राप्ति से संबंध रखती है। गुरुजी समझाते हैं कि जगह-जगह भटकने से और तीर्थों पर स्नान करने से मन की निर्मलता प्राप्त नहीं की जा सकती है। मन और आत्मा तभी स्थिर और निर्मल होते हैं जब वे प्रभु रूपी सत्य से जुड़ते हैं। सत्य से जुड़ने का साधन प्रभु का सच्चा शब्द यानी सच्चा नाम है। इसलिए जब तक हम शब्द के साथ जुड़कर प्रभु में अभेद नहीं होते, मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती है। गुरुसाहिब जी कहते हैं साधारण जीव कर्मों से बंधे हुए संसार में आते हैं, लेकिन संत, सतगुरुप्रभु के हुक्म से दूसरे जीवों के कल्याण के लिए संसार में आते हैं। वे जीवों को प्रभु-प्राप्ति का सच्चा मार्गदर्शन करके

आवागमन के चक्कर से मुक्ति दिलाते हैं। गुरुजी ने योग और त्याग दोनों का संबंध मन और आत्मा से बताया है, शरीर से नहीं। जिस प्रकार कमल की जड़े पानी और कीचड़ में होती हैं, परन्तु फूल सदा इनसे उपर रहता है, उसके पंख कभी पानी और कीचड़ से भिगते नहीं उसी प्रकार जो साधक नाम के साथ अपने आप को जोड़ लेता है, वह मायामय संसार में रहता हुआ भी इससे निर्लेप रहता है और भवसागर से पार हो जाता है। वे हमें सावधान करते हैं कि गुरुमुख लोग मन को नाम के साथ जोड़कर सच्ची मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। गुरुजी गुरुमत के इस बुनियादी सिद्धांत पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि प्रभु प्राप्ति शरीर की साधना पर नहीं बल्कि मन की साधना पर निर्भर है। जो व्यक्ति सतगुरु द्वारा समझाई युक्ति के अनुसार परमेश्वर के नाम के साथ अपने को जोड़ लेता है, वह हर प्रकार की आशा प्राप्त कर लेता है। सिद्ध गोष्ठी में हमें योग की चर्चा भी स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। तृष्णा से मुक्ति गुरुसाहिब रामकली राग के एक शब्द में योगियों को संबोधित करते हुए कहते हैं सहज लंगोटा बंधन ते छूटा। काम क्रोध गुरु सबदी लूटा।।' हे योगी तू सतगुरु के उपदेश पर अमल करके 'सहज अवस्था की लंगोटी बाँध ले। गुरुसाहिब कहते हैं -इससे विषय विकारों का नाश हो जाएगा और संसार के आवागमन के बंधन से तुझे छुटकारा मिल जाएगा, जिससे तू मुक्ति को प्राप्त कर लेगा।

हठयोग : हठयोग के प्रणेता भगवान आदिनाथ को कहा जाता है। हठयोग का ज्ञान सर्वप्रथम भगवान शिव के द्वारा माँ पर्वती को दिया गया था। तदुपरांत इस ज्ञान को मत्स्येन्द्रनाथ, उनके शिष्य गोरखनाथ तथा स्वात्माराम व अन्य योगियों ने जाना। आधुनिक समय में हमें सबसे प्रचलित योग हठयोग दिखाई देता है, जिसे लोग केवल शरीर तक सीमित समझते हैं। परन्तु ऐसा नहीं है। हठयोग मनुष्य का सर्वांगीण विकास करता है। हठयोग दो शब्दों से मिलकर बना है- ह और ठ 'ह' सूर्य, पिंगला, दाँया, शिव, हकार, प्राण आदि और 'ठ' चन्द्र, इडा, शक्ति, बाँया, कार, अपान आदि। प्राण और अपान का मिलन ही हठयोग है। हठयोग का उद्देश्य केवल राजयोग

है। इसके अर्न्तगत अनेक अंगो की चर्चा की जाती है, जैसे- चतुरंग योग, बड़ाग योग, सप्तांग योग, अष्टांग योग आदि। हठयोग के अर्न्तगत हमें अनेक अभ्यास देखने को मिलते हैं, जैसे- आसन, कुम्भक, मुद्रा एवं बंध, शोधन क्रिया, ध्यान, व सामाधि आदि ।

हठयोग में मोक्ष की संकल्पना :- हठयोग में मोक्ष के पर्यायवाची शब्द के रूप में समाधि का प्रयोग किया गया है। समाधि के अनेक नाम बताये हैं, जैसे- राजयोग, कैवल्य, सहजानन्द, परमानन्द, मनोन्मनी, अमरत्व, लय, शून्याशून्य, निरालंब, परमपद, जीवनमुक्ति आदि। हठयोग में मोक्ष के सन्दर्भ में कहा गया है कि जिस प्रकार से नमक जल में घुलता है, उसी प्रकार से आत्मा में मन का विलय होता है। इसी को समाधि कहा गया है। जीवात्मा का परमात्मा से मिलन होने पर साधक के सभी संकल्प नष्ट हो जाते हैं। इसी अवस्था को समाधि कहते हैं ध्यान की वह अवस्था जिसमें मन निःस्पन्द हो जाता है समाधि कहलाती है तथा जब तक मन की क्रियाशीलता समाप्त नहीं हो जाती, प्राणवायु की क्रियाशीलता बनी रहती है। जिसने प्राण और मन दोनों का लय कर लिया, वही साधक मोक्ष को प्राप्त करता है। निश्चित रूप से जहाँ वायु की क्रिया होती है। वहाँ मन की भी क्रिया होती है, तथा जहाँ मन क्रियाशील रहता है, वहीं वायु भी क्रियाशील रहती है। एक के नाश होने पर दूसरे का भी नाश हो जाता है। एक की क्रियाशीलता रहने पर दूसरे की क्रियाशीलता भी रहती है। जब साधक के श्वास का आवागमन पूरी तरह रुक जाता है तब इन्द्रियों के द्वारा विषयों का ग्रहण पूरी तरह समाप्त हो जाता है, जब साधक कोई क्रिया नहीं करता तथा वस्तुओं के प्रति आकर्षित नहीं होता तब योगियों को मोक्ष प्राप्त होता है। जब साधक हठयोग के अभ्यास से सभी इच्छाओं को समाप्त कर लेता है तब एक विशिष्ट प्रकार की लयस्थिति उत्पन्न होती है, जिसका अनुभव साधक स्वयं ही कर सकता है। जो अनुभव शब्दों के द्वारा अवर्णनीय है इसे ही हठयोग में मोक्ष कहा गया है।

विश्लेषण : सिद्ध गोष्ठी एवं हठयोग में हमें अनेक समानताएँ देखने को मिलती हैं। सिद्ध गोष्ठी में मन को स्थिर करके नाम में विचित्र को लगाने से मोक्ष की प्राप्ति की बात कही है। इसी प्रकार हठयोग में भी चित्त को प्राण में लय करके मोक्ष की बात कही है। गुरु नानाक देव जी सिद्ध गोष्ठी में कहते हैं कि मोक्ष के मार्ग पर चल रहे साधक को इस बात के प्रति सजग रहना चाहिये कि वह गफलत (अज्ञानता) की नींद में न सो जाए। उसे मन को पराए घर में नहीं जाने देना चाहिये। नाम के बिना मन निश्चल नहीं होता और न ही तृष्णा शांत होती है। गुरुनानाक देव जी समझाते हैं कि सतगुरु ने मुझे दुकान, बाज़ार और अपना घर दिखा दिया है, जिसके द्वारा सहज अवस्था में पहुँचकर सत्य का व्यापार किया जा सकता है। सच्चा साधक कम सोता है, कम खाता है और सदैव प्रभु नाम या परमतत्व के विचार में मग्न रहता है। हठयोग में साधक के चित्त की स्थिरता के लिए साधक तत्व के रूप में तत्वज्ञान एवं मिताहार की चर्चा की गई है, साधक को सर्वचिन्ता छोड़कर गुरु के द्वारा बताए गए मार्ग से ही अभ्यास करने का सलाह दी गयी है। हठयोग का उद्देश्य केवल राजयोग को प्राप्त करना है और यही मोक्ष है। गुरुनानाक देव जी कहते हैं कि माया का उपासक मन मस्त हाथी की तरह संसार रूपी माया के जंगल में भटक रहा है। यह कालानुसार हर तरफ भागता है। जब गरुमुखों की शरण प्राप्त होती है तो इसे अपने वास्तविक घर की सूझ हो जाती है। सतगुरु से जुड़े बिना मन कभी शांत नहीं हो सकता। इसलिए मनमत का त्याग करके मन को प्रभु के निर्मल नाम में लीन करना चाहिए। यही बात हठयोग में भी कही गई है कि जिस प्रकार उद्यान में भ्रमण करनेवाले गजराज को बहुत नुकीले अंकुश से वश में किया जा सकता है उसी प्रकार विषयों के उद्यान में भ्रमण करनेवाले मन को अनाहत नाद रूपी नुकीले अंकुश से नियंत्रित करने का प्रयास करना चाहिये।

निष्कर्ष : गुरु नानक देव जी सिद्ध गोष्ठी में मोक्ष के पर्यायवाची शब्द मुक्ति का प्रयोग करते हैं, सिद्ध गोष्ठी में

(शेष पृ.सं. 48)



मिथकीय परिपेक्ष्य में समकालीन नाटक

◆ डॉ. शबाना हबीब

“मिथक शब्द यूनानी भाषा के मिथ शब्द से बना है और मिथ (सआर) शब्द का उद्भव यूनानी शब्द (घोरज) से हुआ है, जिसका अभिप्राय है कोई भी मौखिक कथा। कालान्तर में मुखीस का प्रयोग किसी सामान्य कथा से भिन्न अर्थ में किया जाने लगा, जिसका संबंध विशेष प्रकार की कथा से था। अपने विशिष्ट अर्थों में मिथ का संबंध एक ऐसी कथा से है, जिसके द्वारा कहने और सुननेवाले सृष्टि या ब्रह्माण्ड संबंधी कोई तथ्य समझते हैं। अतः मिथ अंग्रेज़ी के मिथ (सआर) शब्द के रूप में हिंदी में भी प्रयुक्त होने लगा”¹

18वीं शताब्दी तक यही समझ जाता था कि मिथक यानी काल्पनिक कथा, जिस पर वैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से बिलकुल विश्वास नहीं किया जा सकता था। सर्वथा मिथक एक तरह की काव्यात्मक भाषा है, एकमात्र भाषा जिसके लिए आदिम मानव समर्थ था। एक वास्तविक भाषा है जिसके अपने रूपात्मक सिद्धांत और तर्क हैं।

भारतीय मनीषियों ने अपने-अपने ढंग से मिथ के अर्थ दिए हैं एवं उसे व्याख्यायित किया है। हिंदी में बहुप्रचलित मिथक शब्द आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की देन है। भारतीय संस्कृति एवं परंपरा के प्रति अत्यधिक आदर भाव के कारण ही उन्होंने अंग्रेज़ी के ‘मिथ’ शब्द के साथ कर्तावाचक ‘क’ प्रत्यय जोड़कर ‘मिथक’ शब्द का निर्माण किया। अर्थात् उन्होंने मिथ शब्द का भारतीयकरण किया।

भारत में पुराण कथा, धार्मिक कथा, ऐतिहासिक कथा, लोक कथा, दंत कथा जैसी अनेक कथाओं के लिए मिथक शब्द प्रचलित है। मानवीय क्रिया व्यापारों की अभिव्यक्ति ही साहित्य है। इन मानवीय क्रिया-व्यापारों की ही व्याख्या साहित्य करता है। मिथक और साहित्य एकदूसरे के पूरक है। दोनों का संबंध अत्यंत प्राचीन काल से है। अपने आपको देखने, जानने,

समझने, परस्पर जानने के लिए दोनों अत्यंत उपयुक्त है। साहित्य में हित की भावना होती है। साहित्य मिथक पर आधारित होने से हित की भावना बलवती हो जाती है। डॉ. नगेंद्र मिथक और साहित्य में ऐसा कहा है कि मिथस या मिथः जिसका अर्थ है परस्वर, मिथ्या, जो असत्य का वाचक है। यदि मिथक का संबंध मिथस से स्थापित किया जाए तो इसका अर्थ हो सकता है सत्य और कल्पना का परस्पर अभिन्न संबंध अथवा ऐकात्म्य।

हिंदी में समय-समय पर बहुत सारे मिथकीय नाटक निकलते रहते हैं। इन मिथकीय नाटकों में मेरे मन को भानेवाले दो नाटक हैं मीराकांत के ‘कन्धे पर क्यों बैठा शाप’ (2013) और हबीब तनवीर के ‘बहादुर कलारिन’ (2004)। मीराकांत हिंदी के सशक्त महिला नाटककार हैं। आपका समकालीन भारतीय साहित्य में प्रकाशित श्रूयते न तु दृश्यते शीर्षक नाटक का परिवर्तित रूप है ‘कन्धे पर क्यों बैठा शाप’। इस नाटक को लिखने की प्रेरणा उन्हें महाकवि कालिदास के कार्शणिक देहांत से जुड़ी जनश्रुति से है। वही नाटक की कथावस्तु या कथाक्रम का केंद्र है। इसमें स्त्री जीवन यानी कि गणिका (वेश्या) जीवन की शापग्रस्त स्थितियों को कालिदास के जीवन के वैयक्तिक अभिशाप के साथ मिलाकर प्रस्तुत किया है। कालिदास के महत्त्व को लेकर नाटक तो लिख चुके हैं। लेकिन उसके अंत के बारे में किसी ने भी इशारा नहीं किया।

प्रचलित जनश्रुति के अनुसार कालिदास का देहांत आर्यवर्त में न होकर सिंहलद्वीप (श्रीलंका) में घटित हुई थी, वहाँ के इतिहास के मुताबिक कुमारसेन (धानुसेन) के युग को जानना आवश्यक है। कहा जाता है कि कालिदास की समाधि आज भी श्रीलंका में है। सिलोन से प्रकाशित जानकीहरण में सिंहल के विद्वान धर्मराम के अनुसार कालिदास व कुमारदास के बाद कुमारदास की पाँच रानियाँ भी उस दिन सती हुईं। उनके अनुसार कुमारदास के निवास प्रदेश मातर में सात समाधियाँ बनाई गईं और दाह स्थलों पर सात वृक्ष लगाए गए।

आज भी मात्र नगर की सीमा के भीतर ही एक ऐसा स्थान है जिसे सात बोकक्ष की वाटिका हवेदिदृष्ट कहते हैं। परंपरागत किंवदन्ती के अनुसार यह घटना नहीं घटी थी।

कालिदास के व्यक्तिगत अभिशाप के बारे में नाटक में वर्णन है। विद्योत्तमा काशी नरेश की विदुषी पुत्री थी। उसने पहले कालिदास को एक मामूली गंवार समझकर शादी करने से इनकार किया। जब वह एक महान नाटककार सिद्ध हुआ तो विद्योत्तमा उसे पति मान चुकी थी। लेकिन कालिदास ने उसे एक पत्नी का स्थान नहीं, एक गुरु का स्थान दे दिया। इससे कुछ होकर उन्होंने शाप दिया कि “मैं तुम्हें शाप देती हूँ ... जाओ तुम्हारे जीवन के अंत का कारण एक स्त्री ही हो... तुमने पत्नी की कामना का अपमान किया है..... उस कामना का जिस पर उसका पूरा अधिकार है..... अहंकार से भरे तुम्हारे इस जीवन का अंत उसके हाथों होगा जिसे तुम और तुम्हारा समाज अबला समाज कहता है और उसे अबला बने रहने पर विवश करता है.....”²

सिंहलद्वीप के कवि कुमारदास आर्यवर्त के कालिदास के रघुवंश से अत्यधिक प्रभावित थे। परिणामस्वरूप उसने संस्कृत में जानकीहरणम् की रचना की। कुमारदास सिंहलद्वीप के नरेश भी थे। कालिदास ने जानकीहरणम् का अध्ययन किया और उसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा भी की थी।

“जानकीहरणम्’ के रचयिता से मिलने कालिदास सिंहल आ जाता है। एक साधारण वेष धारण करके वह एक गणिका कामिनी के यहाँ पहुँचता है। वह कामिनी राजा की प्रेयसी थी। राजा से वह शादी करना चाहती थी। इसके बारे में पूछते समय राजा ने एक अधूरा श्लोक लिखकर उसे पूरा करने के लिए उसके हाथ सौंपकर कहा कि केवल तुम्हारा कुमारदास..... वचन देता है कि यह रचना संपूर्ण होते ही मैं पत्नी रूप में तुम्हें स्वीकार करूँगा। तुमसे विवाह करूँगा”³ उस श्लोक की पूर्ति करने में कालिदास ने मदद की। यह राज बाहर न खुलने के लिए उसने कालिदास को विष पिलाकर मार डाला। कामिनी को यह पता नहीं था कि उसने जिसकी हत्या की है वह प्रख्यात नाटककार

कालिदास है। फिर पता चलने के बाद आत्मग्लानि की वजह से कामिनी भी विष पीकर मृत्यु को साथ ली। कालिदास की मृत्यु का समाचार सुनकर कुमारदास ने उनकी अंतिम कृति जो उसने कामिनी के लिए पूरा करके दिया था, एक हाथ में उस कृति को उठाया और दूसरे हाथ में कालिदास के जूतों को लेकर कालिदास की ही चिता में कूदकर जलकर मर जाता है। इसका चित्रण मीराकांत ने ऐसा किया है कि तेरा कुमारदास अग्नि को साक्षी मानकर कालिदास के साथ ही प्रस्थान करेगा। होम हो जाएगा चिता में वह भी देख कैसा अंत-”इतिहास से कालिदास की मृत्यु पर कोई दोस प्रमाण नहीं मिलता। जनश्रुतियों और किंवदंतियों का आधार मात्र प्राप्त है, इसे चाहे तो मिथक का नाम हम दे सकते हैं। इन बातों को आधार बनाकर ही मीराकांत ने इस नाटक की रचना की है। इसके साथ-साथ उसने इस नाटक को नारी विमर्श की दृष्टि से भी आंकने का प्रयास किया है।⁴ गणिका के माध्यम से समाज का चित्रण या स्त्री की दुर्दशा दिखाने के लिए कोई भी तैयार नहीं हुए। कालिदास के अंत की घटना जितनी प्रकाश में आयी, एकपक्षीय रही। कामिनी के पक्ष की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। मानवाधिकार के आलोक में देखें तो कामिनी और उसकी मनोदिशा को कैसे नकारा जा सकता है। सिंहलद्वीप के नरेश स्वयं उसके यहाँ आते थे। निःसंदेह नगरवधू जैसी हालत हो गयी उसकी। उनकी आर्थिक स्थिति तो बेहतर थी। वह सुसंस्कृत भी थी। लेकिन परतंत्र रही। उस प्रकार का जीवन छोड़कर वह विवाह-बंधन में बाँधना चाहती थी। लेकिन कुछ नहीं हो पाया।

गहराई से देखें तो कामिनी ने कालिदास का नहीं। एक ऐसे व्यक्ति का वध किया, जो उसके स्वप्न की पूर्ति में बाधक हो सकता था जिस क्षण उसे बोध हुआ कि वही आर्यवर्त के सुविख्यात कवि कालिदास है। उसने आत्महत्या कर ली। कामिनी का कुमारदास की अद्धांगिनी बनने का स्वप्न राजवैभव का लोभ समझकर टाला नहीं जा सकता। हमारे पुरुष प्रधान समाज में गणिका वृत्ति को वासना की दृष्टि से देखते हैं। अपने को सुरकिरने के लिए नामक संस्था पर करती थी। कुमारदास केतका प्रेमी के लिए

रक्ताती है। इसी कीटकीय माली ने देखा कि कुएं में से एक पौधा उग आया पात्रों का आधार है, जबकि राजम्मा अन्याय है। कम और मानवीकृत समाज का दंश अधिक है।

‘बहादुर कलारिन’ छत्तीसगढ़ी भाषा में लिखा नाटक है। छत्तीसगढ़ के तीन गाँव हैं नवागाँव, सोरगढ़ और चिरचारी सोरार। चिरचारी लगभग एक दूसरे से लगे हुए गाँव हैं। बहादुर नाम की औरत वहाँ की रहनेवाली है। वह शराब बेचती है। आस पास के गाँवों से और दूर-दूर के इलाकों से लोग शराब पीने के लिए आते थे। बहादुरिन बहुत ही खूबसूरत थी। लोग दो उद्देश्यों से दुकान में आते थे - एक बहादुर को देखने और दूसरा शराब पीने। उसके सौन्दर्य की यही करिश्मा थी कि - “ये साले ला का पड़े ही जब से आय है बहादुर के नाम के माला जपेत..... तान के झापड पड़ही ते तब भुला जही”⁵ छछन छडू बहादुर का बेटा था। कहा जाता है कि छछन ने एक सौ शादियाँ कीं, लेकिन असंतुष्ट रहा। इसके बारे में बहादुर छछन से कहता है “फेर अप्सरा बिहा के लाव तब तोला सुख मिलती। सब गाँव भर के दूरी ला बहू बना के आज नाक कटा के बड़ठे हंस! कैसे बेटा”⁶। कालांतर में वह अपनी माँ को भी वासना की दृष्टि से देखने लगी। यह जानकर बहादुरिन तंग रह गई और छछन से बदला लेने का निश्चय किया। बहादुरिन ने गाँववालों से कहा कि अगर छछन छडू पानी माँगकर आता तो पानी मत देना। एक दिन छछन प्यास से तड़पकर घर आकर बहादुरिन से पानी माँगने लगा। तब बहादुरिन ने कहा कि घर में पानी नहीं है, कुएँ से पानी लेकर पीओ। यह सुनकर छछन कुएँ की तरफ बढ़ा तो बहादुरिन उनका पीछा करती है। कुएँ से पानी लेकर पीते वक्त बहादुरिन उसे पीछे से धकेलकर कुएँ में गिराता है और वह मर जाता है। छछन की मृत्यु के उसी क्षण बहादुरिन अपने सीने में कटार भोंगकर आत्महत्या करती है। नाटक में छछन को कुएँ में धकेलने तक का वर्णन है। बाकी वस्तुतः जनश्रुति इस प्रकार है कि दोनों की मृत्यु के बाद गाँववालों ने देखा कि कुएँ में से एक पौधा उग आया, है। जिसमें रंगबिरंगी पत्तियोंवाले फूल हैं। अलग-अलग रंग के फूल नहीं, एक ही फूल में अलग-अलग रंग की पत्तियाँ थीं। इस अद्भुत फूल को देखने के लिए जर्मनी से आए हुए पर्यटकों में एक

वैज्ञानिक था। उसने इन फूलों को तोड़कर प्रयोगशाला में ले चला। लेकिन कोई नतीजा न निकला। एक दिन वह पौधा हमेशा के लिए मुरझाया गया। लाख कोशिश करने पर भी दबारा पनपा नहीं सका। लोक कथा तो केवल माँ-बेटे के बारे में थी। प्रेमी जिसके माधुसम से छछन छडू ने जन्म लिया उसका न तो कोई खास जिक्र था और ना उसका व्यक्तित्व कथा के अंदर दिखाया गया था। उनका व्यक्तित्व कुछ इस प्रकार है कि “चैत! चलरे येमन ला मजा चखाबोन!”⁷ ये सब हबीबजी की कल्पना की चीज़ थी। उनके जोहन में राजा ईडिपस का मिथक भी था। हमारे शास्त्रों में भाई-बहन की यौन संबंधों की तरफ इशारा तो मिलता है लेकिन एक लोक कथा में ईडिपस कॉम्प्लेक्स जैसी मनोवैज्ञानिक बात की गहराई देखकर हबीबजी ने इसका इस्तेमाल किया। कलारिन की कहानी में पिता का महत्व नहीं है। लेकिन नाटक में उसने बाप का महत्व बढ़ा दिया। इसमें बेटा पिता को मारता है। बस इतना फरक है कि नाटक ‘राजा ईडिपस’ में बेटा बाप को अनजाने से मारता है और ‘बहादुर कलारिन’ में जान बूझकर मारता है।

इस प्रकार देखें तो इन दो नाटकों में मिथकीय चेतना भरपूर है। मिथकीय दृष्टि से परखने पर मालूम हो जाता है कि मीराकांत एवं हबीब तनवीर ने इसका इस्तेमाल कथा की रोचकता बढ़ाने के लिए किया है।

संदर्भ सूची

1. काव्य मिथक, डॉ.पुष्पपाल सिंह, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं. 2, 2003
2. कंधे पर क्यों बैठा शाप, मीराकांत, भारतीस ज्ञानपीठ, पृ.सं. 27, 2013
3. वही पृ.सं.42
4. तीन खेल, हबीब तनवीर, पृ.सं.41, वाणी प्रकाशन, 2004
4. बहादुर कलारिन पृ.सं 41, वाणी प्रकाशन, 2018

◆ सहायक आचार्या
राजकीय महिला महाविद्यालय
तिरुवनंतपुरम जिला
केरल।



अस्मिता के तलाश में 'धूल पौधों पर'

◆ डॉ.षीबा एम.आर

सार:- समकालीन सामाजिक यथार्थ को सहज और विश्वसनीय ढंग में प्रस्तुत करने की कला ने श्री गोविंद मिश्र को चर्चित रचनाकारों की पंक्ति में समासीन किया है। वह अपना चेहरा, उतरती हुई धूप, लाल पीली ज़मीन, हुज़ूर दरबार, तुम्हारी रोशनी में, धीर समीरे, पाँच आँगनोंवाला घर, फूल इमारतें और बंदर, कोहरे में कैद रंग, धूल पौधों पर आदि उनके महत्वपूर्ण उपन्यास हैं। उत्तराधुनिक रचनाओं की सबसे बड़ी खासियत यह है कि वह किसी नियम पर आधारित नहीं है। सन् 2013 के सरस्वती सम्मान प्राप्त उनका दसवाँ उपन्यास है 'धूल पौधों पर'। इस उपन्यास की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि इसमें चित्रित कई पात्रों को कोई नाम नहीं दिया है। मिश्र जी के विचार में एक नाम देने से विशेष प्रयोजन नहीं, क्योंकि ये पात्र केवल प्रतीक हैं, जो युगों से चली आ रही हमारी व्यवस्था के अंधेरे पक्ष हैं। गोविन्द मिश्रजी ने 'धूल पौधों पर' के ज़रिए नारी शोषण, विवशता, संघर्ष तथा अस्तित्वबोध का चित्रण करने के साथ-साथ प्रेम के विशाल अर्थ धरातल को पाठकों के सामने प्रस्तुत भी किया है।

बीज शब्द : नारी शोषण, जागरण, संघर्ष, अस्तित्वबोध, प्रेम का विशाल अर्थ।

किसी भी व्यक्ति को अकेलापन का अनुभव तब होता है, जब वह हर तरह से उपेक्षित है। नारी जीवन में यह आभास अधिक दिखाई देता है, क्योंकि पुरुष की अपेक्षा नारी अस्वतंत्र है। संबंधों से टूटा हुआ स्त्री बहुत जल्दी अकेलापन से ग्रसित हो जाती है। 'धूल पौधों पर' उपन्यास की नायिका बचपन से ही अकेली थी, प्यार के लिए बहुत तरसती थी। मिश्र जी ने नायिका को यहाँ कोई नाम नहीं दिया है। वह बहुत छोटी थी, दिल का दौरा

पड़कर पिता का देहांत हो गया था। कुछ दिनों बाद पिता के बक्से में से कुछ कागज़ मिले, जिनसे पता चला कि उनकी माता कोई और थी। माँ के न रहने पर पिता ने उसे और भाई को इस घर में ले आया था। विमाता के तीन लड़के थे, वे बहुत क्रूर थे। नायिका का कथन है "मुझे ज़बरदस्ती पेड़ के ऊपर ऐसी जगह चढ़ा देते जहाँ से मैं उतर न सकूँ .. मेरे कपड़े फट जाते.. मैं डरती थी, चिल्लाती थी, पर वे न उतारते, कहीं गायब हो जाते।.. कभी-कभी तो दिन भर पेड़ पर बैठी रहती .. किसी से शिकायत न कर पाती। मैं पेड़ से उतर पाती जब भाई या किसी राहगीर की नज़र में आ जाती।¹ उसका एकमात्र सहारा अपना भाई था, सौतेले भाइयों के षड्यंत्र की तहत उसके भाई का प्राण भी चला गया। भाई की मृत्यु के बाद वह एकदम अकेली पड़ गई। विमाता उससे घर के सारे काम कराती थी। इतना दुख सहकर भी उसने अच्छी तरह पढ़ा और दसवीं में स्कूल टॉप हो गयी। नायिका आगे पढ़कर एक डॉक्टर बनना चाहती थी। लेकिन उससे बिना कुछ कहे सौतेली माँ उसकी शादी तय करती है।

स्त्रियों में जागरण आया है, इसमें कोई शक नहीं है, विकास का नया प्रकाश आया है। पर यह भी उतना भयावह सच है कि सामान्य अनपढ़ स्त्रियों के साथ-साथ शिक्षित, कामकाजी स्त्रियाँ भी शोषण से पीड़ित हैं। उन्हें सेकेंड सेक्स यानी उपेक्षिता, मानी जाती है। पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था के अनुसार स्त्री को एक गुलाम की तरह होना चाहिए। इस विचार से पाले गये पुरुष के साथ जीना स्त्री के लिए बहुत दुष्कर है। नायिका के पति को एक प्राइवेट फर्म में नौकरी है, लेकिन यह नौकरी उसे पसंद नहीं। समाज में आदर और प्रतिष्ठा पाने के लिए उसने ज्योतिष में एक डिग्री भी ले ली, स्वयं युवागुरु

घोषित कर लिया। घर के पास मन्दिर बनाकर वह अपनी पत्नी को भी वहाँ बैठने के लिए मजबूर करता था। मन्दिर की गद्दी पर संत बनकर सामनेवालों से मीठी बातें करनेवाला पति उसे केवल भोगवस्तु समझता था। “मैं कोई चीज़ हूँ, जानवर हूँ या पत्नी हूँ तो इसलिए मनुष्य भी नहीं हूँ ? मेरी इच्छा अनिच्छा कुछ नहीं .. रात भर उसने मुझे एक जबर कुत्ते की तरह चींथा .. मेरे शरीर का कोई हिस्सा नहीं छोड़ा.. यहाँ तक कि मेरे बाल खींचे,जबरदस्ती मेरे कपड़े उतार फेंके...रात भर मुझे रेंदते रहा...।”² घर का सारा काम उसको अकेला करना पड़ा। सास तो चिड़चिड़ी थी,चोट खाई बाघिनी की तरह थी,उसको सताती रही। सास ससुर को शादी के तुरंत बाद ही अपने बेटे का बच्चा चाहिए था। इसलिए उसने एक बेटे को जन्म दिया । “मैं क्या हूँ ... कागज़ का एक टुकड़ा जिसे जूते की मोटी एडी से घिसकर कोई छेद-छेद कर दे...या जानवर का बच्चा जिस पर से गाड़ी निकाल दी जाए और आप बिना पीछे देखे फरते हुए आगे निकल गए ...।”³ नायिका का जीवन तकलीफों से भरा था,फिर भी पढ़ाई नहीं छोड़ी,एम.फिल तक पढ़ा।

गोविन्द मिश्र ने यहाँ प्रेम के विशाल अर्थ को परिभाषित करने की कोशिश की है। प्रेम कोई औपचारिक उपक्रम न होकर,आत्मिक स्तर पर की जाने वाली गहन अनुभूति है। प्रेम दो हृदयों में निहित समान प्यास के आदान-प्रदान से उत्पन्न होता है। प्रेमानुभूति के लिए जाति,धर्म ,रंग ,वर्ग, उम्र आदि के भेद निरर्थक हैं। मिश्र जी के विचार में प्रेमानुभूति में वासना नहीं करुणा का विस्तार होता है, जिसकी प्रेरणा से प्रेमी अधिक मानवीय हो जाता है। अटूट विश्वास के धरातल से उत्पन्न हुआ प्रेम ज़िंदगी भर स्थाई रूप में रह जाता है। इस प्रकार प्रेम की एक नयी अवधारणा ‘धूल पौधों पर’ उपन्यास में देख सकते हैं। एम.फिल को पढ़ते वक्त अपने कॉलेज में व्याख्यान देने केलिए आए प्रसिद्ध समाजशास्त्री, अधेड़ उम्र के प्रेमप्रकाश के प्रति नायिका के मन में

बहुत लगाव आ जाती है। दोनों के बीच दोस्ती बढ़ जाती है। इसके ज़रिए प्रेमप्रकाश जैसे बौद्धिक,प्रौढ़ व्यक्ति के मन से ऊब,अकेलापन आदि दूर हो जाते हैं,एक प्रकार से सुंदरता ,कोमलता,और मधुरता आ जाती है। प्रेमप्रकाश ने अपने जीवन में धन, प्रतिष्ठा, इज़्जत सब कुछ हासिल किया है, लेकिन ज़िंदगी के इस पड़ाव पर आकर उन्हें ऐसा लगता है कि ये सब निरर्थक हैं। प्रेमप्रकाश और नायिका के बीच जो प्रेम संबंध उमड़ जाता है वह भावुकता से अधिक बौद्धिक धरातल पर है। नायिका की घुटन,समस्याएँ आदि समझकर प्रेमप्रकाश उसका साथ देता है। तुम्हें एक दोस्त चाहिए। जब तक कोई नहीं बनता मुझे ही अपना दोस्त समझो। नायिका को भी उसके पास बैठना अच्छा लगता था। “उस वजह से नहीं आप प्रसिद्ध आदमी हैं। बड़े आदमी हैं। इसलिए कि आपमें करुणा है।”⁴ प्रेमप्रकाश के संपर्क में आने से वह अपना अस्तित्व पहचानने लगी। धीरे-धीरे वह अपने ऊपर हो रहे अन्याय का विरोध करने लगी। वह कहती है-“झाड़ू की पत्तियों पर धूल थी जिसके कारण एक बासीपन उससे उठता था।”⁵लेकिन प्रेमप्रकाश से मिलने से धूल के धोए जाने पर पौधे (नायिका) की चमक वापस आयी। नायिका की समस्याएँ समझकर उसे एक पत्रकारिता शिक्षण संस्थान में नौकरी दिलवा देती है,साथ ही पी.एच.डी करने की सलाह भी देता है। जब पति उसे घर से निकाल देता है तब प्रेमप्रकाश की मदद से दूसरे शहर में एक स्कूल में अध्यापिका बन जाती है। वहाँ अकेली रहने की वजह से कई सवालों का सामना करना पड़ता है। अपने बच्चे सिद्धार्थ की खातिर वह वापस ससुराल जाती है। “अपनी इज़्जत का ख्याल....क्या इतना बड़ा था कि बच्चे को बरबाद होने को छोड़ दिया जाए। क्यों यह नहीं सोच सकती थी कि वह चली गई तो पीछे बेटे का ख्याल करनेवाला कोई नहीं।”⁶ इन दोनों का प्रेम लीक से हटकर आगे नहीं बढ़ पाया।

कई अवसरों पर प्रेमप्रकाश नायिका के रूप-सौन्दर्य और स्वभाव पर आकृष्ट हो जाता है। “प्रेमप्रकाश ने इधर के हाथ को उठाकर उसकी हथेली को चूम लिया, फिर जैसे मदहोशी में उसकी पूरी बाँह को चूमते चले गए, कलाई से कोहनी तक, बाहों की चिकनाई पर अपनी आँखें बार-बार रगड़ते हुए।”⁷ बाद में वह प्रेमिका के प्रति दैहिक आकर्षण से बाहर आ जाता है और उनका प्रेम दैहिकता से ऊपर उठ जाता है। जब नायिका प्रेमप्रकाश के साथ रहने की इच्छा प्रकट करती है तब वह इनकार कर देता है। सामाजिक मान्यताओं को चुनौती देकर उसे अपना और अपनी पत्नी को इस उम्र में असहाय छोड़ देना उनके लिए मुमकिन नहीं था। यहाँ आकर उसका आदर्शवादी रूप उभर आ जाता है। मन से वह नायिका को चाहता है, उसके प्रति करुणा है, कुछ भी करने को तैयार है, लेकिन इसके लिए दोनों की सामाजिक पहचान और पारिवारिक संबंधों को खतरे में डालना नहीं चाहता। वह नायिका को उसके जीवन का लक्ष्य भी समझाता है कि “तुम्हारे अवचेतन में तुम्हारे जीवन का लक्ष्य भी बना बैठा है। वह है बेटे के जीवन को संवारना, जो अपूर्णता तुम्हारे जीवन में रही, जो चूकें हुई वे उसके जीवन में न हों... उठो, संभालो और फिर चलो। मैं तुम्हारे साथ हूँ... हमेशा रहूँगा।”⁸ आगे प्रेमप्रकाश कहता है—“तुम जानना चाहती हो कि मैं क्या हूँ तुम्हारे जीवन में, जीवन ने मुझे तुम्हारा जो बना दिया है, मैं वही हूँ। मैं तुम्हारी माँ हूँ, भाई हूँ ... जो जो तुमसे छिन्ता चला गया, जो तुम्हें मिला नहीं प्रेम भी, वह सब मैं हूँ। मैं तुम्हारा मायका हूँ जो तुम्हें नसीब नहीं हुआ।”⁹ अपने इच्छानुसार जीवन बिताने का आत्मधैर्य नायिका में आ जाता है। वह स्वयं अपने बेटे के साथ पति के घर से जाने का निर्णय लेती है।

निष्कर्ष : ‘धूल पौधों पर’ में गोविन्द मिश्रजी स्त्री के परंपरागत रूप और पितृसत्तात्मक सोच में बदलाव को उभारता है। परिवार या समाज में स्त्री के स्थान और अधिकार को मिश्र जी सचेत करती है। यहाँ तक कि

स्त्री को अपनी देह पर स्वतंत्र अधिकार तक नहीं है। ‘धूल पौधों पर’ की नायिका की खासियत यह है कि ज़िन्दगी में तरह-तरह की समस्याएँ झेलने के बावजूद भी वह हिम्मत हारने को तैयार नहीं थी। प्रेमप्रकाश के संपर्क में आकर उसको सही जीवन-दृष्टि और अस्तित्वबोध मिल जाते हैं। शिक्षा और नौकरी करने, उसकी समस्याओं का समाधान ढूँढने तथा उसे जागृत करने में वह मदद करता है। अपने व्यक्तित्व और अपनी अस्मिता की पहचान प्रेमप्रकाश के ज़रिए नायिका को मालूम पड़ता है। प्रेम की परिपूर्णता के लिए दूसरों की ज़िन्दगी खतरे में डालने के लिए इस उपन्यास के नायक-नायिका तैयार नहीं हैं, दोनों एक-दूसरे की भला चाहते हैं। समग्र रूप से कहा जाए तो इस उपन्यास के ज़रिए मिश्रजी ने स्त्री की नियति, शोषण, दमन आदि को गहरी संवेदना के साथ प्रस्तुत कर उसमें अपनी अस्मिता की पहचान दिलाने की जो कोशिश की है वह एकदम सराहनीय है।

आधार ग्रंथ : धूल पौधों पर, गोविन्द मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013

संदर्भ :

1. गोविंद मिश्र ,धूल पौधों पर ,पृ.सं 90
2. वही, पृ 23
3. वही, पृ.23
4. वही, पृ 30
5. वही, पृ 29
6. वही, पृ 117
7. वही, पृ 22
8. वही, पृ 156
9. वही, पृ 156

◆ हिन्दी विभाग
असिस्टेंट प्रोफेसर
श्रीनारायणा वनिता कॉलेज
कोल्लम, केरल।



भारतीय न्यायिक व्यवस्था में हिन्दी भाषा के प्रयोग की स्थिति

◆ डॉ प्रदीप कुमार पाण्डेय

सार :- भारत में हिन्दी का दर्जा राजभाषा के रूप में स्वीकृत है और इसके उन्नयन के लिए सरकारी स्तर पर लगातार कोशिश की जा रही है। इसके लिए विभिन्न कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं ताकि हिन्दी को एक सम्माननीय पद पर प्रतिष्ठित किया जा सके। लेकिन जब बात न्यायिक व्यवस्था की होती है, जो हर एक पीड़ित व्यक्ति की व्यथा के निवारण के लिए एकमात्र उपाय और उपचार प्रदान करती है, तो हिन्दी के प्रयोग के परिप्रेक्ष्य से उच्चतर स्तर पर बहुत संतोषजनक स्थिति नहीं है। प्रस्तुत शोध पत्र भारतीय न्यायिक व्यवस्था में हिन्दी के प्रयोग की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण करता है।

की वर्ड : न्याय, विधि, न्यायिक व्यवस्था, उच्च न्यायालय, उच्चतम न्यायालय।

प्रस्तावना :- माननीय प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने कहा है - “एक सक्षम राष्ट्र और सामंजस्यपूर्ण समाज के लिए एक संवेदनशील न्यायिक प्रणाली बहुत ज़रूरी है।” किसी भी देश की न्यायिक व्यवस्था का प्रमुख उद्देश्य न्यायालय के समक्ष मामले में संबन्धित पक्षकारों को प्रभावी न्याय देना है, ताकि न केवल ज़रूरतमन्द को न्याय मिल सके, बल्कि वैसे ही समान मामले में दूसरे लोगों के लिए भी न्यायालय की कार्यवाही और निर्णय पथ प्रदर्शक के रूप में कार्य कर सके। इन उद्देश्यों को पूर्ण रूप से तभी प्राप्त किया जा सकता है जब न्यायालय की कार्यवाही और विधिक प्रक्रिया की जानकारी और सूचना समाज के अंतिम व्यक्ति तक पहुँचाई जा सके। इस विषय में सर्वप्रथम, जो सबसे ज़रूरी है वह है भाषा। भाषा केवल विचार और अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं है, अपितु यह राष्ट्रीय एकीकरण के लिए भी एक सशक्त माध्यम है। भारतीय विधिक एवं न्यायिक व्यवस्था में यह सर्वमान्य सिद्धांत है कि न्याय केवल

किया ही नहीं जाना चाहिए, अपितु न्याय दिखना भी चाहिए और यह तभी संभव है जब न्याय प्रदान करने की प्रक्रिया एक आम आदमी की समझ के परे न हो। समय-समय पर यह माँग उठती रही है कि न्यायालयों में अपना भी जानेवाली प्रक्रिया हिंदी या क्षेत्रीय भाषाओं में संचालित किये जाएँ, ताकि मामले के पक्षकार भी अवगत हो सकें कि उनके मामले में कौन-सी प्रक्रिया अपनाई जा रही है और न्यायालयी क्रियाकलाप कैसे संचालित हो रहे हैं?

भारतीय न्यायिक व्यवस्था :- वर्तमान भारतीय न्यायिक व्यवस्था कॉमन लॉ सिस्टम पर आधारित है जो ब्रिटिश विधि व्यवस्था की देन है। अतएव, आज भी भारत की विधिक और न्यायिक व्यवस्था पर औपनिवेशिक व्यवस्था की पूर्ण छाप है। भारत के स्वतंत्र होने के बाद भारतीय संविधान सभा द्वारा भारत का संविधान निर्मित किया गया और हर एक व्यक्ति को मौलिक अधिकार प्रदान किये गए, जिनमें से एक अधिकार न्यायालयों तक सुगमतापूर्वक पहुँच सुनिश्चित किया गया, ताकि कोई भी पीड़ित न्याय प्राप्त करने से वंचित न रह जाये। संविधान के अनुच्छेद 343 में संघ की राजभाषा हिन्दी घोषित की गयी और अनुच्छेद 350 हर एक व्यक्ति को अपनी व्यथा के निवारण हेतु किसी अधिकारी या प्राधिकारी को संघ या राज्य में प्रयुक्त होनेवाली किसी भाषा में अभ्यावेदन करने का अधिकार देता है। लोगों को न्याय उपलब्ध कराने हेतु पूरे देश में एकीकृत न्यायिक व्यवस्था की स्थापना की गयी, जिसमें अधीनस्थ न्यायालय और उच्चतर न्यायालय (उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय) हैं। इन न्यायालयों में प्रयुक्त भाषा और विशेषतः हिंदी भाषा के दृष्टिकोण से निम्नवत् विश्लेषण किया जा सकता है।

अधीनस्थ न्यायालय सामान्यतः विवाद की स्थिति में प्रारंभिक तौर पर मामले अधीनस्थ न्यायालय, दीवानी न्यायालय, आपराधिक न्यायालय और राजस्व न्यायालय में ही आते हैं जहाँ पर मामले के पक्षकारों का सीधा वास्ता न्यायिक अधिकारियों और उसके कर्मचारियों से होता है। इन न्यायालयों में मामले की प्रकृति के अनुसार दीवानी प्रक्रिया संहिता या दण्ड प्रक्रिया संहिता या फिर राजस्व संहिता का प्रयोग होता है। अतएव इन विधियों में हिन्दी में प्रावधानित न्यायालयीय कार्य-पद्धति का वर्णन समीचीन है। दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 28 में हिन्दी भाषा में समन हेतु प्रावधान है जहाँ पर प्रतिवादी किसी अन्य राज्य में निवास करता है और समन जारी करनेवाले न्यायालय की भाषा हिन्दी है। इसी तरह धारा 137 में राज्य सरकार अधीनस्थ न्यायालयों की भाषा का निर्धारण कर सकती है। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 272 में राज्य सरकारों को यह अवधारित करने हेतु अधिकृत किया गया है कि उच्च न्यायालय से भिन्न न्यायालयों की भाषा क्या होगी। अतः आपराधिक मामले में प्रत्येक कार्यवाही राज्य सरकार द्वारा नियत भाषा में ही की जाती है। राजस्व न्यायालय राज्य सूची का विषय होने के कारण उनसे संबंधित विधि बनाने का पूर्ण अधिकार राज्य सरकारों के पास है और संबंधित सरकारें उस राज्य की भाषा में कार्यवाहियाँ संचालित करने हेतु संबंधी विधि बनायी हुई हैं। जैसा कि यह बहुत स्पष्ट है कि अधीनस्थ न्यायालयों पर संबंधित राज्य सरकार और उच्च न्यायालय का नियंत्रण और पर्यवेक्षण होता है अतएव इस विषय में राज्य सरकार और उच्च न्यायालय ने समय-समय पर क्षेत्रीय भाषा या हिन्दी का उपयोग करने संबंधी प्रावधान बनाये हुए हैं ताकि आम आदमी अपने मामले को समझ सके और तदनुसार अपने हितों का संरक्षण कर सके।

उच्चतर न्यायालयः- उच्चतर न्यायालयों में उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय शामिल हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 348 में दिये गये उपबंधों के अनुसार उच्चतम न्यायालय और प्रत्येक उच्च न्यायालय

में सभी कार्यवाहियाँ अंग्रेजी भाषा में होंगी, लेकिन भारतीय संसद इस विषय में अन्य उपबंध कर सकता है। आज तक संसद द्वारा अनुच्छेद 348 के विषय में कोई विधि न बनाने के कारण उच्चतम न्यायालय में सारी कार्यवाहियाँ केवल अंग्रेजी में होती हैं। संसदीय राजभाषा समिति ने अपनी संस्तुति सं. 13 (1998) में कहा कि उच्चतम न्यायालय में अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी का प्रयोग प्राधिकृत होना चाहिए। प्रत्येक निर्णय दोनों भाषाओं में उपलब्ध हों। उच्चतम न्यायालय द्वारा हिन्दी और अंग्रेजी में निर्णय दिया जा सकता है। यदि निर्णय हिन्दी में सुनाया गया हो तो उसका अंग्रेजी अनुवाद करके और यदि अंग्रेजी में सुनाया गया हो तो उसका हिन्दी अनुवाद करके ऐसा किया जा सकता है। इतने वर्षों के बीत जाने के बाद भी संसदीय राजभाषा समिति की संस्तुति पर आज तक कोई ठोस निर्णय नहीं लिया जा सका और भारत की जनता उच्चतम न्यायालय के निर्णय अंग्रेजी में पढ़ने के लिए बाध्य है और जिन्हें अंग्रेजी नहीं आती है वे उच्चतम न्यायालय के लंबे-लंबे निर्णय को केवल देख सकते हैं, लेकिन भाषाई असमर्थता के कारण उसमें प्रतिपादित विधि या सिद्धांत को महसूस नहीं कर सकते हैं।

भारत के विधि आयोग ने बहुत सारे न्यायाधीशों, अधिवक्ताओं और विधिवेत्ताओं से प्राप्त विचारों के आधार पर अपनी रिपोर्ट संख्या 216 में सिफारिश की कि किसी भी परिस्थिति में कोई भाषा उच्चतर न्यायापालिका के न्यायाधीशों पर नहीं थोपी जानी चाहिए और उन्हें उस भाषा में जिसे वे अधिमान दें, अपने निर्णय देने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाना चाहिए। अंग्रेजी भाषा का प्रयोग वकीलों की गतिविधियों को उच्च न्यायालय से उच्चतम न्यायालय में आसान बनाता है, क्योंकि उन्हें किसी भाषा संबंधी समस्या का सामना नहीं करना पड़ता है और दोनों स्तरों पर भाषा अंग्रेजी रहती है।

विशेष रूप से उच्च न्यायालयों के लिए अनुच्छेद 348 (2) में संबंधित राज्य के राज्यपाल को राष्ट्रपति

की पूर्व सहमति से उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों में हिन्दी या किसी अन्य भाषा का प्रयोग प्राधिकृत करने हेतु अधिकृत किया गया है। ऐसा ही प्रावधान राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 7 में भी दिया गया है, जैसे- उच्च न्यायालयों के निर्णयों आदि में हिन्दी या अन्य राजभाषा का वैकल्पिक प्रयोग नियत दिन से ही या तत्पश्चात् किसी भी दिन से किसी राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से, अंग्रेज़ी भाषा के अतिरिक्त हिन्दी या उस राज्य की राजभाषा का प्रयोग, उस राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा पारित या दिए गए किसी निर्णय, डिक्री या आदेश के प्रयोजनों के लिए प्राधिकृत कर सकेगा और जहाँ कोई निर्णय, डिक्री या आदेश (अंग्रेज़ी भाषा से भिन्न) ऐसी किसी भाषा में पारित किया या दिया जाता है वहाँ उसके साथ-साथ उच्च न्यायालय के प्राधिकार से निकाला गया अंग्रेज़ी भाषा में उसका अनुवाद भी होगा ।

उपरोक्त प्रावधान के तहत कुछ राज्यों, जैसे- मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार के उच्च न्यायालयों में कार्यवाहियों के साथ-साथ निर्णयों, आदेशों या निर्देशों में भी हिन्दी के प्रयोग को प्राधिकृत किया गया है। वर्तमान समय में ये उच्च न्यायालय हिन्दी में भी आदेश, डिक्री और निर्णय देते हैं। वर्ष 1965 में संसदीय समिति ने एक निर्णय लिया था जिसके तहत यदि किसी उच्च न्यायालय में हिन्दी या अन्य क्षेत्रीय भाषा के उपयोग हेतु प्रस्ताव भारत सरकार को प्राप्त होते हैं तो उस पर निर्णय लेने से पूर्व भारत की मुख्य न्यायमूर्ति की टिप्पणियाँ आवश्यक हैं।

इसी अनुक्रम में मद्रास उच्च न्यायालय, गुजरात उच्च न्यायालय और छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय की कार्यवाही में क्रमशः तमिल, गुजराती और हिन्दी के प्रयोग की अनुमति देने के लिए तमिलनाडु, गुजरात और छत्तीसगढ़ सरकार से प्रस्ताव भारत सरकार को प्राप्त हुए थे। लेकिन भारत की मुख्य न्यायमूर्ति ने उचित विचार-विमर्श के उपरांत प्रस्तुत प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया और तदनुसार भारत सरकार ने उपरोक्त

प्रस्ताव को आगे नहीं बढ़ाया। पुनः तमिलनाडु सरकार ने भारत सरकार से उपरोक्त विषय में वर्ष 2014 में आग्रह किया जिसे भारत सरकार ने मुख्य न्यायमूर्ति को उच्च न्यायालयों में हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं के प्रयोग के लिए और अधिक लचीलापन प्रदान करने के लिए इस संबंध में पिछले निर्णयों की समीक्षा करने का अनुरोध किया। लेकिन अंततः इस प्रस्ताव को भी मुख्य न्यायमूर्ति ने अनुमोदित नहीं किया।

संसदीय राजभाषा समिति ने अपनी संस्तुति संख्या 16 (1998) में कहा कि उच्च न्यायालयों के निर्णयों, प्रतिक्रियाओं व आदेशों में राज्य की राजभाषा अथवा हिन्दी का प्रयोग किया जाना चाहिए। किन्तु यह व्यवस्था भी की जानी चाहिए कि प्रत्येक निर्णय का प्राधिकृत अनुवाद दोनों भाषाओं में उपलब्ध हो। जब तक अंग्रेज़ी का प्रचलन बना रहता है तब तक इनका प्राधिकृत अनुवाद अंग्रेज़ी में सुलभ कराने की व्यवस्था की जा सकती है, तथापि उच्च न्यायालयों की कार्यवाहियाँ राज्य की राजभाषा अथवा हिन्दी में या अंग्रेज़ी में की जा सकती हैं।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष प्रबंधक समिति और अन्य बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक (1977) के मामले में यह प्रश्न था कि क्या देवनागरी लिपि में हिन्दी में तैयार की गयी रिट याचिका न्यायालय द्वारा पोषणीय है? माननीय उच्च न्यायालय ने धारित किया कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि किसी भी स्थान के निवासियों के लाभ के लिए कार्य करनेवाले न्यायालयों की कार्यवाही सैद्धांतिक रूप से उनकी समझी जानेवाली भाषा में होनी चाहिए। न्यायालयों के लोकतांत्रिक स्वरूप को बनाए रखने के लिए देशी भाषा का प्रयोग आवश्यक है। उनकी भाषा के प्रयोग से ही उन्हें लोगों से जोड़ा जा सकता है; यह न्यायालयों की एक आवश्यक लोकतांत्रिक विशेषता है और समाजवादी न्याय की नींव में से एक है।... यह भी समान रूप से स्पष्ट है कि किसी मामले की सुनवाई करनेवाले उच्च न्यायालय का न्यायाधीश अपने निर्णय या डिक्री या आदेश को हिन्दी में पारित

करने के लिए स्वतंत्र है, यदि वह ऐसा चाहता है, लेकिन उसे ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। हालाँकि, यदि वह हिंदी में कोई आदेश या डिक्री आदि पारित करता है, तो उस पर अभी भी एक ही सीमा लगाई गयी है कि उसके साथ उच्च न्यायालय के प्राधिकार द्वारा ज़ारी अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद होना चाहिए। उच्च न्यायालय ने निर्णीत किया कि देवनागरी लिपि में हिन्दी में तैयार की गयी रिट याचिका न्यायालय द्वारा स्वीकार्य है और उसको निर्णीत किया जा सकता है।

राजस्थान उच्च न्यायालय ने नरेंद्र कुमार बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय और अन्य, (1991) में निर्णित किया कि अंग्रेजी के अलावा उच्च न्यायालय के निर्णयों और आदेशों में वैकल्पिक भाषा के रूप में हिंदी का उपयोग भारत के संविधान के किसी प्रावधान के उल्लंघन में नहीं कहा जा सकता है, बल्कि यह राजभाषा अधिनियम के अनुसार बनाया गया है।

पटना उच्च न्यायालय के समक्ष यह मामला कई बार आया कि क्या देवनागरी लिपि में हिन्दी में रिट याचिका दाखिल की जा सकती है? दरअसल, उच्च न्यायालय में हिंदी भाषा का वैकल्पिक उपयोग करने हेतु बिहार के राज्यपाल ने भारत के राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से ज्ञापन संख्या 185, दिनांक 09.05.1972 के माध्यम से अधिसूचना ज़ारी की है। स्वर्ण सिंह बग्गा बनाम एन.एन. सिंह, (1995) में पटना उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने धारित किया कि संविधान के अनुच्छेद 348 के आदेशों के अनुसार जब तक कि संसद कानून द्वारा अन्यथा प्रदान नहीं करता है, प्रत्येक उच्च न्यायालय में सभी कार्यवाही अंग्रेजी भाषा में होगी। लेकिन स्वर्ण सिंह बग्गा बनाम एन.एन. सिंह, (2003) में पटना उच्च न्यायालय ने धारित किया कि किसी भी व्यक्ति के लिए हिंदी में आवेदन दायर करने पर कोई रोक नहीं है और न ही किसी व्यक्ति के लिए हिंदी में तर्क देने के लिए कोई रोक है और वास्तव में कई मामलों में इसे इस न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया है।

पुनः बिनयकुमार सिंह बनाम बिहार राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य, (2003) के मामले में एकल पी नेस्वर्ण सिंह बग्गा बनाम एन.एन. सिंह, (1995) एवं लालबिहार साव बनाम बिहार राज्य मुख्य सचिव, बिहार सरकार, (2002) के मद्देनज़र पटना उच्च न्यायालय ने कहा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत एक रिट याचिका पटना उच्च न्यायालय में केवल अंग्रेज़ी भाषा में प्रस्तुत की जा सकती है। लेकिन अपील में बिनयकुमार सिंह बनाम बिहार राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य, (2010) में खंड पी ने धारित किया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत अंग्रेज़ी के अलावा किसी अन्य भाषा में आवेदन करने पर कोई प्रतिबंध नहीं है। जयप्रकाश बनाम बिहार राज्य और अन्य, (2017) के मामले में पटना उच्च न्यायालय खंड पीने कहा कि अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका हिंदी में दायर की जा सकती है और उसी भाषा में तर्क दिए जा सकते हैं। कृष्णा यादव बनाम बिहार राज्य, (2019) में पटना उच्च न्यायालय ने कहा कि आज की विशिष्ट वृत्तिक दुनिया में विधिक वृत्तिक और वादी उम्मीद करते हैं कि उनकी समस्याओं को न्यायालय के समक्ष प्रभावी विचारों और अभिव्यक्तियों के माध्यम से एक ऐसी भाषा में पहुँचाया और प्रसारित किया जाय जो संचार के द्वन्द्व और समझ की स्पष्टता को पूरा करती है। किसी भी मानवीय अभिव्यक्ति की चमक उस चिंगारी से निकलती है जो विचारों से प्रज्वलित होती है, चाहे वह किसी भी भाषा को संप्रेषित करने के लिए नियोजित हो। अपनी पसंद की भाषा में अभिव्यक्ति की यह स्वतंत्रता संविधान में निहित है।

निष्कर्ष : भारतीय न्यायालयों में हिन्दी का प्रयोग एक ऐसा मुद्दा है जो आम आदमी के अधिकार से सीधे तौर पर जुड़ा हुआ है। अगर मामले के पक्षकार यह जान पाने में सक्षम नहीं हैं कि उनके मामले में क्या हो रहा है या न्यायालय क्या कर रहा है, तो वे अपने हितों का संरक्षण कैसे कर पाएंगे? और ऐसी परिस्थिति में संवैधानिक

और विधिक व्यवस्था उनके अधिकारों और हितों को संरक्षित नहीं कर पायेगा। हालाँकि अधीनस्थ न्यायालयों और उच्च न्यायालयों, विशेष रूप से हिन्दी भाषी राज्यों में, हिन्दी का प्रयोग सफल रूप से हो रहा है, लेकिन उच्चतम न्यायालय में आज तक संभव नहीं हो सका है। दरअसल, जब हम राष्ट्रीय स्तर पर बात करते हैं तो यह भी सत्य है कि हिन्दी को आज तक जो दर्जा मिलना चाहिए था, नहीं मिल पाया। अतएव, वर्तमान परिवेश में भारतीय न्यायिक व्यवस्था में हिन्दी का आवश्यक रूप से प्रयोग का विरोध होना भी स्वाभाविक है। एच.एम. सीरवई ने उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में हिंदी के प्रयोग का विरोध करते हुए लिखा है कि आज विधि व्यवसाय एक संगठित व्यवसाय है जो सम्पूर्ण भारत में व्यवसाय करने का हकदार है। यदि भिन्न उच्च न्यायालयों की भाषा भिन्न होगी तो संपूर्ण भारत में विधि व्यवसाय करने का अधिकार व्यावहारिक रूप से भ्रमपूर्ण हो जाएगा और प्रत्येक उच्च न्यायालय अपनी स्वयं की भाषा के अवरोध से पृथक हो जाएगा। यह अन्य न्यायालयों के निर्णयों से प्राप्त होनेवाली सहायता से वंचित हो जाएगा और केंद्रीय विधियों का एकरूप निर्वचन, जो कि न्यायिक प्रशासन में इतना वांछनीय है, अप्राप्य हो जाएगा। उच्चतम न्यायालय के कार्य और उच्चतम न्यायालय के लिए न्यायाधीशों की भर्ती पर बड़ा प्रभाव पड़ेगा, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को उन न्यायालयों से भर्ती नहीं किया जा सकेगा, जहाँ भाषा उससे भिन्न है जो उच्चतम न्यायालय में बोली जाती है। न्यायिक प्रशासन पर उच्चतम न्यायालय के एकबद्ध करनेवाले प्रभाव का, यदि वह नष्ट भी नहीं होगा तो, गंभीर रूप से हास होगा और उसके न्यायाधीशों की और उसके निर्णयों की क्वालिटी की आवश्यक रूप से हानि होगी।

भारत के विधि आयोग के विचारों से बहुत स्पष्ट है कि उच्चतम न्यायालय को हिंदी में निर्णय, आदेश एवं निर्देश जारी करने हेतु संविधान संशोधन करना इतना आसान नहीं है, क्योंकि इसका विरोध

गैरहिन्दी भाषी लोगों द्वारा स्वाभाविक है। लेकिन उच्चतम न्यायालय में अनुवादकों के सहयोग से प्रत्येक निर्णय, आदेश और निर्देश को हिन्दी भाषा में रूपांतरित कर हर एक व्यक्ति तक पहुँचाया जा सकता है एवं एक संवेदनशील न्यायिक तंत्र स्थापित किया जा सकता है। तद्वारा एक ऐसे समाज की स्थापना की जा सकती है जिसमें हर एक व्यक्ति अपने कर्तव्यों की अनुभूति के साथ अपने अधिकारों, दावों और हितों का संरक्षण और संवर्धन कर सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. एच.एम. सीरवई, भारत की संवैधानिक विधि, 1996; यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग, नई दिल्ली.
2. कृष्णा यादव बनाम बिहार राज्य, आपराधिक रिट क्षेत्राधिकार मामला संख्या 435/2015, 30 अप्रैल, 2019(पटना)
3. जय प्रकाश बनाम बिहार राज्य और अन्य, 2017(3) बीएलजे (पीएचसी) 113.
4. नरेंद्र कुमार बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय और अन्य, एआईआर 1991, राजस्थान 33.
5. प्रबंधक समिति और अन्य बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक, एआईआर 1977, इलाहाबाद 164.
6. बिनय कुमार सिंह बनाम बिहार राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य, 2003 (2) बीएलजे 418.
7. बिनय कुमार सिंह बनाम बिहार राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य, 2010 (3) बीएलजे (पीएचसी) 83.
8. भारत के उच्चतम न्यायालय में अनिवार्य भाषा के रूप में हिंदी प्रारंभ करने के लिए असाध्यता, भारत का विधि आयोग, रिपोर्ट संख्या 216, 2008.
9. लाल बिहार साव फ्रनाम बिहार राज्य मुख्य सचिव, बिहार सरकार, सीडब्ल्यूजेसी नंबर 1948/2002 दिनांक 09.07.2002.
10. न्याय मिलने में देरी देशवासियों के समक्ष बड़ी और कड़ी चुनौती, दैनिक जागरण, नई दिल्ली, 16 अक्टूबर, 2022, पृष्ठ 16.

11. विधि के क्षेत्र में हिंदी के प्रयोग से संबंधित संसदीय राजभाषा समिति के प्रतिवेदन, खंड 5 में की गई सिफारिशों पर राष्ट्रपति द्वारा पारित आदेशों का अनुपालन संकल्प सं 1/20012/4/92रा.भा. (नी1) दिनांक: 24.11.98.

12. स्वर्ण सिंह बग्गा बनाम एन.एन. सिंह, 2003(1) पीएलजेआर 315.

13. स्वर्ण सिंह बग्गा बनाम एन.एन. सिंह, सीडब्ल्यूजेसी नंफ्र 2825/1995, 05 मई, 1995 (पटना).

◆ एसोसिएट प्रोफेसर
विधि विभाग
ब्रह्मानंद पी.जी. कॉलेज
कानपुर, उत्तर प्रदेश



‘सुनो शेफाली’ में अभिव्यक्त राजनीतिक चेतना

◆ शिल्पा एस.एल

सामाजिक चेतना के प्रमुख रूपों में राजनीतिक चेतना का महत्वपूर्ण स्थान है। राजनीतिक चेतना राजनैतिक विचारधारा के रूप में व्यक्त होती है। राजनीति का पर्यायवाची अंग्रेजी शब्द पॉलीटिक्स (नौबज) है, जो यूनानी भाषा के पोलिस (नैज) शब्द से बना है, जिसका अर्थ ‘राज्य’ और ‘नीति’ का अभिप्राय नियम है। इस प्रकार राजकाज चलाने के लिए जो नियम है, उसे राजनीति माना जाता है। राजनीतिक चेतना से तात्पर्य यह है कि समाज में अपने राजनीतिक अधिकारों व क्षमताओं के प्रति चेतना उत्पन्न करना। राजनीतिक अवनति या सत्तागत विसंगतिपूर्ण स्थितियों में जो प्रतिभाशक्ति आकर्षक दीप्ति बनकर चमक उठे और जिसके प्रभाव से समस्त समाज में नवजागरण की लहर दौड़ जाये, उसे राजनीतिक जागरूकता या राजनीतिक चेतना कह सकते हैं।¹

बीज शब्द : राजनीतिक चेतना, छल, चुनाव।

इंद्रधनुष कुसुम कुमार जी की बहुचर्चित नाट्य रचना है -‘सुनो शेफाली’। यह नाटक देश के वर्तमान राजनीतिक परिवेश पर करारा व्यंग्य है। शेफाली इस नाटक की नायिका है, जो हरिजन लड़की है। वह कठिन प्रयत्न से बी.ए. की उपाधि प्राप्त करती है। इसी कारण से ब्राह्मण सत्यमेव दीक्षित ने अंग्रेजी पढ़ने के लिए उसे

अपना ट्यूटर रखा है। इसके पीछे उसके दो उद्देश्य हैं- एक तो अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान प्राप्त होगा और दूसरा एक हरिजन लड़की से पढ़ने के कारण समाज में ख्याति प्राप्त होगी। सत्यमेव एक समाज सेवक है और समाज सेवा से राजनीतिक सत्ता हथियाना चाहता है। शेफाली के दलितत्व का फायदा उठाने के लिए उसको नौकरी देता है। शेफाली सत्यमेव के बेटे बकुल से प्रेम करती है। इस प्रेम का विषय सुनकर सत्यमेव खुश हो जाता है और चुनाव के पहले ही दोनों का विवाह करा देना चाहता है। लेकिन शेफाली को पता चलता है कि सत्यमेव उसका विवाह बकुल से इसलिए करवाना चाहता है कि उससे उसकी राजनीतिक पृष्ठभूमि मज़बूत हो सके और वह अपने आपको हरिजनों का उद्धारक सिद्ध कर सके, जिससे वह चुनाव आसानी से जीत सके। शेफाली अपनी अम्मा से कहती है। “(उबलकर) तू क्यों उन्हें इतना भोला समझती है, अम्मा ? वह क्यों शादी करना चाहते हैं मुझसे- अभी ... इसी वक्त ... मैं खूब समझती हूँ ... बाप - बेटे अपनी समाज सेवा की सरसों हाथेली पर जमाना चाहते हैं.... एक हरिजन लड़की का उद्धार किया उन्होंने कह-कहकर अपने लिए जिंदाबाद के नारे लगवायेंगे और मैं? उनके विज्ञापन की तस्वीर बनी।”²

शोफाली एक स्वाभिमानी लड़की है। उसका चरित्र विद्रोहात्मक चेतना का है। इसलिए वह अपना जीवन भ्रष्ट राजनीति के लिए बलिदान करना नहीं चाहती। भ्रष्ट व्यवस्था के खिलाफ शोफाली का आक्रोश इन्हीं वाक्यों से स्पष्ट होती है। “शोफाली हम वहाँ से एक जीप पर खाना हो:..शहर भर में लाउडस्पीकर पर बोलते हैं.... वोट दीजिए हमें बहनों ओर भाईयो वोट !तुम मुझसे ऊँचे खड़े हो। कहते जा रहे - वोट फॉर दीक्षित ...वोट फॉर ...लोग सड़क के अपने अपने मकान के ओर । उनका ध्यान तुम कुछ ओर आकर्षित करना चाहते हो, इसलिए जीप एक चौराहे के एं बीच रोककर बोलना शुरूकरते हो -बहनों ओर भाइयो ..अपना वोट हमें देखकर अपना भविष्य उज्वल बनाइए....यह बात आपसे आज यहां इस जीप में मौजूद एक हरिजन लड़की कह रही है। इस लड़की को मैं आज ही अभी अभी ब्याहकर ला रहा हूँ। गरीबी का हटाया जाना इस देश के लिए जितना ज़रूरी है उतना ही उतना ही हरिजनों का उद्धार भी।”³

शोफाली शादी करने से इंकार करती है तो बकुल नाराज़ हो जाता है और शोफाली की बहन किरण से शादी करता है । राजनीति के सामने शोफाली की व्यक्तिगत पराजय हुई है। फिर भी सत्ता और व्यवस्था के प्रति एक अकेली निहत्थी नारी ने आवाज़ उठाई है , यह उसकी विजय है। ‘सुनो शोफाली’ में राजनेताओं के छल, कपट , दोहरे व्यक्तित्व , स्वर्था जैसी अनेक बातों पर चर्चा की गयी है। सत्यमेव गांधीजी को अपना आदर्श मानते हैं , उन्हीं के रास्ते पर चलकर सत्ता के सिंहासन पर पहुँचना चाहते हैं । लेकिन वह गांधीजी का प्रिय भजन, ‘वैष्णव जन तो तेनेहि कहिए ...पीर पराई जाणे रे।’ सनुकर क्रोधित होता है । उसको भजन का शोर असह्य करता है।

सत्यमेव भजन सुनकर कहते हैं- “अरे भाई बंद करो ये बकवास ! ये क्या लगा रखा है ?”⁴

सत्यमेव दीक्षित चुनाव जीतने के लिए किसी भी हद तक गिरने के लिए तैयार हो जाता है । वह अपने बेटे बकुल को भी अपनी तरह बनाता है । इसलिए ही वह शोफाली को छोड़कर उसकी बहन से शादी करता है । नाटक का अंत शोफाली की विशेष मनः स्थिति से होता है । नेपथ्य से एक स्वर उभरता है - “कायरो के मरण अध्याय इसी तरह हर रोज़ खुलते.... हर रोज़ बंद होते हैं।”⁵ यह वक्तव्य शायद राजनीतिक जीत की ओर शोफाली की व्यक्ति पराजय की ओर संकेत करता है। शोफाली कायर नहीं है। उसने भ्रष्ट राजनीति के खिलाफ आवाज़ नहीं उठाई है । लेकिन बकुल अवश्य कायर है -एक प्रेमी के रूप में और एक पुत्र के रूप में। कुसुम कुमार जी ने ‘सुनो शोफाली’ नाटक में समाज सेवियों के छल , कपट , टूटते हुए जाति-भेद , हरीजनों को मिलनेवाली रियायतें तथा मनम आचार्य जैसे झूठे ज्योतिषी के पाखंड आदि को आधार बनाकर समकालीन राजनीतिक परिवेश का प्रभावशाली चित्रण किया है । नाटक अवसरवादियों की कायरता पर चोट करता है । प्यार भी इनके लिए राजनीति का अखाड़ा बनता है। राजनीतिक स्वार्थ की नंगी तस्वीर इस नाटक में देखने को मिलती है। यह नाटक वास्तव में कथ्य के स्तर पर चौंकानेवाला एक नवीन प्रयोग ही है।

सन्दर्भ सूची

- 1 साठोत्तरी हिंदी नाटकों में युग चेतना, डॉक्टर विजया दिगंबर राव गाड़वे, विकास प्रकाशन - 2013- पृ - 127
- 2 समग्र नाटक - सुनो शोफाली-कुसुम कुमार - किताबघर प्रकाशन- 2018 -पृष्ठ संख्या -340
- 3 वही -पृष्ठ -363
- 4 वही -पृष्ठ - 326
- 5 वही - पृष्ठ -367

◆ शोध छात्रा
यूनिवर्सिटी कॉलेज,
तिरुवनंतपुरम जिला
केरल।

दलित चेतना 'छप्पर' उपन्यास के संदर्भ में



'छप्पर' उपन्यास में जयप्रकाश कर्दम ने शिक्षा के माध्यम से दलित चेतना का प्रखर होते स्वरूप को उकेरा है। सामाजिक-सांस्कृतिक धरातल पर निम्न समझे जानेवाले दलितों द्वारा मुख्यधारा वर्ग की साजिश और षड्यंत्र को खारिज करके समूल परिवर्तन लाने का संघर्ष इसमें है।

बीज शब्द : दलित चेतना, छप्पर, वर्ण व्यवस्था। साहित्यकारों की सहृदयता ने समाज के उपेक्षित-शोषित वर्ग दलितों की समस्याओं को पाठकों के सम्मुख रखने का कार्य किया है। अनुसूचित जातियों के प्रति समाज का नज़रिया बदलने का सराहनीय प्रयत्न दलित साहित्यकारों के माध्यम से हो रहा है। जातिगत भेदभाव रखनेवाले सवर्णमेधा समाज द्वारा दलितों पर की जानेवाली दमनवृत्ति का लंबा इतिहास प्राप्त है। जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' उपन्यास की पृष्ठभूमि में शिक्षा के माध्यम से दलितों को जागस्क बनाकर उनमें चेतना भरने का आह्वान है।

हाशिपुत्रों के उद्धार का सर्वोत्तम साधन है 'शिक्षा'। उपन्यास का केंद्रीय पात्र चंदन के माध्यम से समाज में व्याप्त कट्टर जातीयता के विरुद्ध अनगिनत विषमताओं और विसंगतियों की आग में झुलस रहे दलितों का संघर्ष है। मातापुर गाँव के अनपढ़ खेत मज़दूर सुक्खा का इकलौता बेटा चंदन पढ़ाई में तेज़ था। शिक्षा को सर्वोपरि माननेवाला सुक्खा ने चंदन को आगे की पढ़ाई के लिए शहर भेजा। गाँव के पुरोहित काणे पंडित, ठाकुर हरनाम सिंह जैसे समाज के सामंतवाद और पुरोहितवाद के लोगों को यह असह्य था। काणे पंडित का कथन है - "तू कितना ही बड़ा हो जा सुक्खा, लेकिन धर्मशास्त्रों से बड़ा नहीं हो सकता तू। अपमान करता है धर्मशास्त्रों का, वेद वेदांतों का तुम्हें प्रायश्चित्त करना पड़ेगा, तुझे सुक्खा प्रायश्चित्त। जल्दी से अपने बेटे को शहर से वापस बुला और प्रायश्चित्त करने का उपाय कर।" ¹

जाति के नाम पर समाज में वर्चस्व रखनेवाले सुसभ्य लोगों के खोखलेपन का खुला चित्रण इसमें है। धमकी मात्र नहीं, बल्कि चालाक हरनाम सिंह ने यह वादा भी किया

◆ नेजमा टी.एन

कि चंदन को वापस बुलायेंगे तो वह उसे हिसाब किताब का काम देगा। लेकिन सुक्खा ने उसके षड्यंत्र को समझकर अपने बेटे को वापस नहीं बुलाया। जाति व्यवस्था के मूल में अमानवीय धार्मिक सोच है। हमारे समाज का अभिशाप है यह भेदभाव। इसको मिटाने और दलितों को वांछित अधिकारों की प्राप्ति के लिए दलित चेतना का रूपायन अनिवार्य है। समाज के सभी स्तरों पर सवर्ण वर्चस्व का बोलबाला था, जिसके खिलाफ अंबेदकर जैसे युगपुरुषों के कठिन परिश्रम के बवजूद समग्र परिवर्तन संभव नहीं हुआ है।

जातिभेद की प्रदूषित मानसिकता का उन्मूलन करके समतामूलक समाज की स्थापना करने के लक्ष्य को लेकर दलितों को अज्ञान के अंधकार से मुक्ति दिलाने के लिए सदियों से प्रयत्न हो रहा है। फिर भी उन्हें सामाजिक स्वीकृति मिलने और निर्भीकतापूर्ण बेजोड़ जिंदगी गढ़ने में पग-पग पर चुनौतियों का मुकाबला करना पड़ता है। पढ़-लिखकर ऊँचे पदों तक पहुँचकर स्वावलंबन और स्वाभिमान का जीवन जीने के लिए प्रतिकूलताओं में भी चंदन ने अपनी पढ़ाई जारी रखी। सुक्खा के खिलाफ सवर्णों की पंचायत ने प्रतिबंधों को बनाए रखा। उसे मज़दूरी नहीं दी। लगान वसूली के नाम पर उसे परिवार समेत घर से बेदखल किया। शहर पहुँचे चंदन ने समझ लिया था कि दलितों की स्थिति शहर में भी गाँव के समान है। वहाँ भी दलित वर्ग भेदभाव, उत्पीड़न सहते हुए अभावग्रस्त जीवन जीने में मज़बूर है। केवल कॉलोनी शब्द ही विभाजक रेखा है गाँव और शहरों के बीच, अन्यथा शहरों की इन झुग्गी झोपड़ीयों या खोलियों में रहनेवाले लोगों तथा गाँव में गारा, मिट्टी या घास-फूस के झोपड़े छप्परों में रहनेवाले लोगों के जीवन स्तर में कोई खास अंतर नहीं है। शहर में भी बहुत से दलित और दरिद्र लोग बिना छुकी भुनी सब्जी खाते हैं या केवल पानी या चाय के साथ नमक की रोटियाँ गले से नीचे उतारकर जिंदा रहते हैं। फाका भी रह जाता है बहुत से घरों में।²

शहर में चंदन ने संत नगर की जे जे कॉलोनी में खिलौने बेचने का काम करनेवाले हरिया नामक

व्यक्ति की झोंपड़ी में रहकर पढ़ाई जारी रखी। ब्राह्मणवादियों ने कई अंधविश्वासों का निर्माण किया जो दलितों के बीच कायम है। अशिक्षित दलितों को ईश्वरीय दंड के नाम पर डराकर उनके शोषण करते हैं तथा उन्हें धार्मिक कर्मकांडों के नाम पर आर्थिक पराधीनता में धकेल देते हैं। उपन्यास में समय पर वर्षा न होने पर कॉलनी के लोग पुरोहितों के उपदेश सुनकर वर्षा देवता को प्रसन्न करने के लिए पैसा इकट्ठा करके यज्ञ का आयोजन करना चाहते हैं। चंदन ने इन भोले भाले लोगों को समझाया कि “इस पैसे से जीवन सुधार का कार्य करना बेहतर है। कथन है इन सबका कोई औचित्य नहीं है। सिवाय इसके कि इसके सहारे कुछ लोगों की आजीविका चलती है और उनको मेहनत करके कमाने की ज़रूरत नहीं पड़ती।”³

दलितों की उन्नति में अंधविश्वास जैसी सामाजिक कुप्रथा बाधक बनी हुई है। उपन्यास में चंदन ने ऐसे अनाचारों का तार्किक रूप में खण्डन करके लोगों के सामने शोषण तंत्र का पर्दाफाश किया। उसने पढ़ाई के दौरान ही दलित युवकों को इकट्ठा करके सामाजिक दायित्वों का एहसास दिलाया। पढ़ाई के साथ-साथ उसने खुद स्कूल खोलकर दलित बच्चों को पढ़ाने का कार्य भी प्रारंभ किया। वह मित्रों को समझाते हुए कहता है “हमें इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए कि हमारी शिक्षा की सार्थकता और हमारे जीवन का मतलब इसमें है कि हमें अपने साथ-साथ अपने समाज के उत्थान और विकास की ओर ध्यान देना चाहिए।”⁴

चंदन के मित्र रामहेतु बिज़नेस करके पैसा कमाकर दलितों की उन्नति चाहता है, तो दूसरा मित्र नंदलाल वकील बनकर कानूनी सहायता करने को सोच रहा है और रतन की अभिलाषा है कि राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश करके दलितों को मदद करना। इन युवा लोगों की प्रेरणा से चंदन के स्कूल में बच्चों की संख्या बढ़ने लगी। उच्च जाति के लोगों के जुल्म से प्रताड़ित एवं आर्थिक विपन्नता में तप रहे दलितों के राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक जैसे सर्वांगीण विकास के लिए सशक्त हथियार के रूप में शिक्षा का प्रयोग करने की अनिवार्यता पर उपन्यास जोर देता है।

बेटे को चंदन के स्कूल में दाखिला करने आई कमला दलित नारी के नारकीय जीवन का दस्तावेज़ है। हरिया की बेटे कमला सामूहिक बलात्कार का शिकार है। उसके मालिक तथा अन्य कर्मचारियों ने मिलकर उस पर अत्याचार किया, पर इस सामाजिक व्यवस्था में उसे न्याय नहीं मिला। अस्पृश्य, अछूत बनकर सामाजिक हैसियत से दूर हाशिए पर, बेहाल होकर दमन-शोषण को भोगनेवाली दलित नारी का जीवन दयनीय है।

उपन्यास में कमला चंदन की सामाजिक गतिविधियों में सहभागी बनती है। ठाकुर हरनाम सिंह की बेटे रजनी चंदन के साथ पढ़ती थी। वह इंसान के प्रति संवेदनशील आत्मिकता का निर्वाह करने वाली लड़की है। रजनी अपने पिता की सामंतवादी सोच के विपक्ष में खड़े होकर अपने पूर्वजों द्वारा आवर्णों पर किए गए अत्याचारों का प्रायश्चित्त करना चाहती थी। उसने भी चंदन की कई बार मदद की। शिक्षा की लहर ने दलित लोगों में सामाजिक संरचना में परिवर्तन लाने में शिक्षा के महत्व की पहचान दिलायी है, जिससे बेहद अत्याचारपूर्ण व्यवहार को सहते हुए मानवोचित जीवन जीने के अधिकार से वंचित जनसमाज का उद्धार होने लगा।

इस प्रकार वर्ण व्यवस्था के निर्धारित नियम के अधीन रहने में मजबूर दलित वर्ग के लिए संघर्ष की राह खोलने का कार्य चंदन ने किया। धीरे-धीरे एक आंदोलन का रूप धारण कर लिया। हमारे समाज में मान-सम्मान और योग्यता का आधार बनी हुई जाति व्यवस्था के खिलाफ आज भी दलित संघर्षरत है। एक जनसभा में चंदन पर आक्रमण को रोकते हुए कमला की मृत्यु हो जाती है। जातिगत व्यवस्था के मूल में निहित मान्यताओं को टुकराकर एक समतामूलक समाज की सृष्टि करने के लिए संघर्ष करना आसान नहीं है। समाज में समानता और समतुल्यता की स्थापना करने की ललक दलितों में प्रगतिशील चेतना बनकर आत्मसजगता का मार्ग प्रशस्त करती है।

रजनी और सुक्खा के कारण हृदय परिवर्तन हुए हरनाम सिंह बहुत से ज़मीन गांव के गरीबों में बांट देते हैं। उपन्यास के अंत में चंदन और रजनी, कमला के बेटे को अपनाकर नयी जिंदगी भी शुरू करते हैं। इस प्रकार उपन्यास का अंत भविष्य के प्रति लेखक के आशावादी दृष्टिकोण का परिचायक

है। एक नवीनतम सामाजिक संरचना के निर्माण के लिए शिक्षा ही सशक्त माध्यम है। जातीयता में निहित मान्यताओं को टुकराकर समानता और सहृदयता की राह खोजना उपन्यास का लक्ष्य है। इस प्रकार लेखक ने चंदन जैसे अनमोल आदर्शवादी व्यक्तित्व की सृष्टि करके दलित समाज के यथार्थ का अंकन करने के साथ शिक्षा को दलित-मुक्ति का आधार मानते हुए दलित चेतना को दिशा देने की कोशिश की है।

निष्कर्ष

‘छप्पर’ उपन्यास में दलित प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद भी सहयोग भावना से संघर्ष करके जातिगत भेदभाव का खंडन करते हैं। वे इस कुव्यवस्था को तहस नहस करके प्रचलित कुप्रथाओं को नकारकर सदियों से झेले गए अनगिनत उत्पीड़नों के खिलाफ प्रतिरोध करने में प्रतिबद्ध हैं। धार्मिक अंधकार में फँसे हुए समाज में उम्मीद की किरण बनकर आये चंदन जैसा व्यक्तित्व संघर्ष का राही है। जाति के नाम पर निर्धारित सामाजिक दर्जे को शिक्षा के माध्यम से चेतनाग्रस्त दलित समाज अस्वीकार करता है। तथाकथित जातीय अंतर्विरोधों को मानवीय धरातल पर गहरी संवेदना के साथ परखना लेखक का लक्ष्य है।

संदर्भ

1. छप्पर, जयप्रकाश कर्दम, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ 35-36
2. वही, पृ 10
3. वही, पृ 19
4. वही, पृ 42-43

संदर्भ ग्रंथ

1. छप्पर, जयप्रकाश कर्दम, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली
2. दलित चेतना साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार, रमणिका गुप्ता, समीक्षा पब्लिकेशन, दिल्ली-2011
3. अंतिम दशक का हिंदी साहित्य, सं. मीरा गौतम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2008

◆ अतिथि प्राध्यापिका
हिन्दी विभाग

एन एस एस कॉलेज, चर्तला।

(पृ.सं.32 के आगे)

मोक्ष प्राप्त करने के अनेक उपायों की चर्चा की गई है, लेकिन मोक्ष-प्राप्ति के लिये आवश्यक तत्व के रूप में प्रभु नाम को ही श्रेष्ठ बताया गया है, उसमें लीन होने से संसार के आवागमन से मुक्ति हो जाती है। गुरुजी केवल उस प्रभु नाम रूपी साधन को ही मुक्ति प्राप्ति के लिये श्रेष्ठ मानते हैं। हठयोग भी मोक्ष के लिये पर्यायवाची शब्द समाधि का प्रयोग करता है। हठयोग में स्वात्माराम योगी कहते हैं कि विशेष प्रकार के वस्त्र धारण करने से या विशेष शास्त्रों की चर्चा करने से नहीं, केवल अभ्यास के माध्यम से ही चित्त उस निरालंब में लीन होता है, वही मुक्ति है। स्वात्माराम कहते हैं कि मन और प्राण के लय होने से अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति होती है, यह अवस्था ही मोक्ष है।

संदर्भ सूची :-

1. शंगारी, डॉ. टी. आर. (2011) सिद्ध गोस्ट और बारहमाहा, पृ.सं. 32. राधास्वामी सत्संग व्यास, पंजाब।
2. वही, पृ.सं. 38.
3. वही, पृ.सं. 56.
4. वही, पृ.सं. 82.
5. अग्निहोत्री, डॉ. कुलदीप चंद. (2019). लोकचेतना और आध्यात्मिक उन्नति के वाहक गुरुनानाक देव जी, प्रभात पेपर फैक्स, पृ.सं.96
6. वही, पृ.सं. 99.
7. वही, पृ.सं. 109.
8. श्री. सर. (2016). सद्गुरुनानक साधना रहस्य और जीवन चरित्र, मंजुल पब्लिशिंग हाउस, पृ.सं.85
9. वही, पृ.सं. 98.
10. सहाय, जी. एस. (2020) हठयोगप्रदीपिका चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, पृ.सं. 32.
11. वही, पृ.सं. 48.
12. वही, पृ.सं. 65.

◆ शोधार्थी (योग शिक्षा विभाग),

डॉ हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)।

केन्द्र सरकारी कार्यालयों में हिंदी शिक्षण योजना

♦ डॉ. अजित्री. आर एस



केंद्र सरकार एवं उसके नियंत्रणाधीन सभी कार्यालयों या विभागों में कार्यरत अधिकारियों या कर्मचारियों को हिंदी की जानकारी देने के साथ-साथ उनके कार्यालयीन कार्य में हिंदी की दक्षता एवं कौशल प्रदान करना हिंदी प्रशिक्षण का उद्देश्य है। 1952 जुलाई में, शिक्षा मंत्रालय ने संवैधानिक प्रावधानों के अनुपालन में केंद्र सरकार के कर्मचारियों को हिंदी पढ़ाने का काम सबसे पहले शुरू किया। 1960 अप्रैल में राष्ट्रपति का आदेश जारी होने के बाद केंद्र सरकार के सभी कर्मचारियों के लिए सेवाकालीन हिंदी प्रशिक्षण अनिवार्य कर दिया गया। सन् 1974 से केंद्र सरकार के नियंत्रणाधीन निगमों, निकायों, कंपनियों, उपक्रमों, बैंकों आदि के कर्मचारियों के लिए हिंदी भाषा, हिंदी टंकण तथा हिंदी आशुलिपि का प्रशिक्षण अनिवार्य बन गया। सन् 1975 में गृह मंत्रालय के अंतर्गत राजभाषा विभाग की स्थापना हुई और हिंदी शिक्षण योजना को राजभाषा विभाग के अधीन कर दिया गया। राजभाषा विभाग की शिक्षण योजना के अधीन केन्द्र सरकारी कार्यालयों में कर्मचारियों के लिए प्रबोध, प्रवीण, प्राज्ञ परीक्षाएं चलाती हैं। प्रारंभिक स्तर का प्रशिक्षण है प्रबोध। जिन कर्मचारियों को प्राइमरी स्तर की हिंदी का ज्ञान नहीं है उन्हें प्रबोध प्रशिक्षण अनिवार्य है। प्रवीण तो मेट्रिकुलेशन स्तर की परीक्षा है। प्रबोध परीक्षा में उत्तीर्ण माध्यमिक स्तर की हिंदी का ज्ञान नहीं होने वाले कर्मचारी को प्रवीण प्रशिक्षण में प्रवेश ले सकते हैं। मेट्रिकुलेशन में हिंदी माध्यम या विषय लेकर 33 से ज्यादा अंक पानेवाले कर्मचारी प्राज्ञ परीक्षा में पढ़कर कार्यालयीन हिंदी में कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। जिन कर्मचारियों को टिप्पणी लेखन तथा पत्र व्यवहार करना पड़ता है, उनके लिए प्राज्ञ प्रशिक्षण प्राप्त करना अनिवार्य है। इसके जरिये शिक्षार्थी मसौदा, रिपोर्ट, मिनट, कार्यवाही

आदि हिंदी में तैयार करने में क्षमता विकसित करते हैं।

राजभाषा विभाग के दिनांक 22.4.2015 के कार्यालय ज्ञापन, संख्या 12012/3/2015 रा0भा0 (नीति) में संसदीय राजभाषा समिति के सातवें प्रतिवेदन की सिफारिश, संख्या 16.7 (क) पर पारित राष्ट्रपति के आदेश के अनुपालन में, केंद्र सरकार के सभी मंत्रालयों/ विभागों तथा उनके संबंध तथा अधीनस्थ कार्यालयों, केंद्र सरकार के स्वामित्व अथवा नियंत्रणाधीन सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों/सांविधिक/स्वायत्त निकायों/ उद्यमों/ अभिकरणों/ निगमों तथा राष्ट्रीयकृत बैंकों आदि में कार्यरत हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर्मियों को सरकारी कामकाज हिंदी में करने में दक्ष बनाने हेतु लागू किया गया अभ्यास पर आधारित नया पाठ्यक्रम है पारंगत। हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर्मचारी पारंगत पाठ्यक्रम के लिए पात्र है। राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा निर्धारित शर्तों को पूरा करने और हिंदी की निर्धारित अंतिम परीक्षा पास करने पर कर्मचारियों को 12 महीनों की अवधि के लिए वेतनवृद्धि की बराबर राशि का वैयक्तिक वेतन प्रदान किया जाता है।

‘राजभाषा विभाग’ द्वारा ‘केंद्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान, नई दिल्ली’ के माध्यम से कंप्यूटर पर सामान्य प्रयोग होनेवाले सॉफ्टवेयरों, एमएस वर्ड, एमएस एक्सेल, पावर प्वाइंट तथा सीडैक् द्वारा विकसित सॉफ्टवेयरों तथा श्रुतलेखन, मंत्र, प्रवाचक तथा वाचांतर व कंठस्थ की जानकारी आदि के प्रयोग द्वारा कुशलतापूर्वक हिंदी में कार्य करने संबंधी जानकारी देने के लिए एवं कंप्यूटर पर हिंदी प्रयोग के लिए, प्रासंगिक अन्य उपयोगी जानकारी देने के लिए कंप्यूटर प्रशिक्षण कार्यक्रम हर वर्ष आयोजित कराए जाते हैं। प्रशिक्षण कार्यक्रम की अवधि 5 दिन है। भारत सरकार के मंत्रालयों/ विभागों, राष्ट्रीयकृत बैंकों

और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के अधिकारी/ कर्मचारी इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग लेते हैं।

इस प्रकार केंद्रीय सरकार के सभी कार्यालयों में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए अनेक प्रशिक्षण एवं प्रोत्साहन दिये जाते रहे हैं।

(पृ.सं.22 के आगे)

अनुवादक ने तुर्की-फ्रांसीसी कोश (1885) का निर्माण किया। मेयनार्ड ने अल मसूदी (Al- Masudi) के Meadows of Gold and Mines of gems(1861-77), तथा कवि सादी (1880) के Fruit Garder का अनुवाद किया। एडवर्ड लाइन (1801 1876) ने Thousand and one nights का अनुवाद किया तथा मशहूर अरबी-अंग्रेजी कोश का निर्माण भी किया।

बीसवीं सदी में उपनिवेशीकरण ने कोश शास्त्र के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। Edmard Murat (1833-1904), Daniel Sanders(1814-97) दोनों ने मिलकर Encyclopedia Dictionary of the English and German Languages (1908) नामक कोश का निर्माण किया, जो संपूर्ण अंग्रेजी-जर्मन कोश का स्थान ग्रहीत है। प्रथम विश्वयुद्ध के पहले फ्रेंच भाषा का जो वर्चस्व था, उसे सन् 1918 के बाद ज़ारी नहीं कर पाया। अंग्रेजी भाषा का ज़माना आया। जे. मेंशन (J. Mansion) के मशहूर फ्रेंच-अंग्रेजी कोश Standard French and English Dictionary का प्रकाशन हुआ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय तथा तदुपरांत जर्मन भाषा का वर्चस्व था, रूसी, बल्गेरिया, रोमानिया, हंगेरियन, अल्बेनियन आदि भाषाओं के साथ जर्मन भाषा का जो संबंध था, इसके परिणामस्वरूप इन भाषाओं में कोशों

संदर्भ :

1. केंद्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान, राजभाषा विभाग, भारत सरकार की आधिकारिक वेबसाइट

♦ असिस्टेंट प्रोफेसर (अतिथि संकाय)
श्री नारायणा कॉलेज, चेंपन्नती
तिरुवनंतपुरम, केरल राज्य ।
मो 9495448129

का निर्माण हुआ। एक तरफ, धार्मिक प्रचार-प्रसार, उपनिवेशीकरण आदि ने विदेशी भाषाध्ययन तथा कोश-निर्माण में सहायता दी तो दूसरी तरफ मार्क्सवादी चिंतन पद्धतियों ने विकासशील देशों में कोश-निर्माण में सहायता दी। सोवियत संघ राष्ट्रों ने अन्य देशों से संपर्क रखने के लिए कोश-निर्माण तथा अनुवाद को महत्वपूर्ण स्थान दिया। अनुवादकों की भूमिका बढ़ गयी।

संदर्भ सूची:

1. A History of the Spanish Lexicon- A Linguistic Perspective, Steven N Dworkin, Oxford University Press 2012.

2. Photius Bibliotheca in Byzantine Literature, Aubrey Diller, The Dumbarton Oaks Papers (DOP), Georgetown Section of Washington DC 1941

सहायक ग्रंथ:

1. Encyclopedia of the Gilded Age and Progressive Era, Volume 1, John D Buenker and Joseph Buenker, Routledge, Newyork 2015

2. निघंटु विज्ञानम्, पी सोमशेखरन् नायर, केरल भाषा इंस्टिट्यूट, तिरुवनंतपुरम, 2016.

♦ असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
सर सईद कॉलेज, तलिप्परंबु, कन्नूर,
केरल।

मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ.पी.लता, आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफिस लेन, वधुतक्काट्टु, तिरुवनन्तपुरम -14 द्वारा अबी प्रकाशन एन्ड प्री-प्रेस, करुमम्, तिरुवनन्तपुरम -2 में मुद्रित तथा डॉ.पी.लता द्वारा संपादित
Printed & Published by Dr.P.Letha, Arathi, T.C. 14/1592, Forest Office Lane, Vazhuthacaud, Thiruvananthapuram -14,
Printed at Abi Design & Pre-Press, Karumom, Thiruvananthapuram -2 & Edited by Dr. P. Letha